Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2395-0390**

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48402 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 7.21

Varanasi Management Review

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor in Chief
Dr. Alok Kumar
Associate Professor & Dean (R&D)
School of Management Sciences
Varanasi

Volume - XII **No. - 1** **(Jan. – Mar.) 2026**

(Part – I)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Varanasi Management Review - **A Multidisciplinary Quarterly International Referred Research Journal**, *Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 010
Mobile No. :- 09336924396
Email- vnsmgrev@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Varanasi Management Review" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2395-0390

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** School of Plant Sciences, Haramaya University, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr. Saumya Singh,** Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Mrinalini Pandey,** Associate Professor, Department of Management Studies, Indian School of Mines, Dhanbad
- **Dr. Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Aditya Kumar Gupta,** Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Abhishek Sharma,** Assistant Professor, Department of Hindi, Ravenshaw University, Cuttack
- **Dr. A. Shanker Prakash,** Assistant Professor, School of Management Sciences, Varanasi
- **Dr. Anil Pratap Giri,** Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Nagendra Kumar Singh,** Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi

- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Varanasi Management Review,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor

CONTENTS

"Varanasi Management Review"

➲	सुभद्रा कुमारी चौहान की काव्य रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना ***अजित सिंह***	01-05
➲	दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में धर्म का निरूपण ***डॉ. अनुराग मिश्र***	06-08
➲	अरवल जिला में सीमांत किसानों की वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन ***मनीष कुमार***	09-12
➲	श्यौराज सिंह 'बेचौन' के काव्य में सामाजिक सरोकार ***मनीष कुमार साव***	13-16
➲	भोजपुरी एवं बांग्ला लोकगीतों में नारी प्रतिवाद के स्वर : एक तुलनात्मक अध्ययन ***संजय साव***	17-24
➲	वृद्धजनों के समायोजन में परिवार और समाज की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन ***डॉ. वन्दना***	25-28
➲	छोटानागपुर क्षेत्र में 1857 का भारतीय विद्रोहः पाण्डेय गणपत राय के संगठनात्मक नेतृत्व का ऐतिहासिक विश्लेषण ***डॉ. कन्हैया प्रसाद सिन्हा***	29-32
➲	हिंदी महिला साहित्यकारों का योगदान : सामाजिक–राजनीतिक चेतना ***डॉ. पुनीता कुमारी***	33-36
➲	पर्यावरण संरक्षण में नई शिक्षा नीति का प्रभाव : एक अध्ययन ***डॉ. सुमन कुमारी***	37-40
➲	वृद्धों के मनोवैज्ञानिक समायोजन में पारिवारिक दृष्टिकोण की भूमिका ***Dr. Ragni Kumari***	41-44
➲	सुरेश्वराचार्य के अनुसार शंकरोत्तर अद्वैत वेदान्त में परमार्थ सत् ***त्रिशूलधारी सिंह*** ***डॉ. अखण्ड प्रताप सिंह***	45-47
➲	उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों में साइबर–बुलिंग, तनाव और शैक्षिक प्रदर्शन के मध्य संबंध का अध्ययन ***आलोक आनन्द***	48-53
➲	बाल श्रमिकों की समस्या और समाधान ***शैल कुमारी***	54-57

सुभद्रा कुमारी चौहान की काव्य रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना

अजित सिंह*

सारांश

भारत में न जाने कितने ऐसे स्वतंत्रता सेनानी हुए, जिन्होंने इस देश की आजादी के लिए हंसते-हंसते अपने प्राणों की आहुति दे दी। देश में ऐसे ही एक कवि स्वतंत्रता सेनानी हुई, जिन्होंने देश की स्वतंत्रता तथा प्रगति में काफी योगदान दिया । इनका नाम है सुभद्रा कुमारी चौहान। यह संवेदनशील कवयित्री, ममतामयी माँ व सच्ची देशभक्ति भी हैं। इन्होंने अपनी कविता, कहानियां और अपने साहस से लोगों में आजादी के लिए जज्बा पैदा किया था। सुभद्रा कुमारी चौहान दलित, पिछड़े और वंचित वर्ग की मुक्ति के लिए हमेशा संघर्षशील रही है। उनकी रचनाओं में तत्कालीन समाज की परिस्थितियॉ साफ झलकती हैं। वह अतीत का गौरव गान भी करती हैं ताकि लोगों में ऊर्जा का संचार हो। *1857* ई के स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजों को लोहा देने वाली झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की रणगाथा को आधार बनाकर उन्होंने एक लंबी कविता लिखी, जिससे उन्हें खूब प्रसिद्धि मिली।

बीज शब्द- **वंचित वर्ग, कुप्रथाओं, छायावाद युग, वीरांगना, काव्य, सत्याग्रही, युग परिवेश, राष्ट्रप्रेम, प्रकृति, राष्ट्रीयता**

राष्ट्र सेवी सुभद्रा कुमारी चौहान का जन्म 16 अगस्त, 1904 ईस्वी में इलाहाबाद (प्रयागराज) में एक गांव निहालपुर में हुआ था। जमींदार परिवार में जन्मी सुभद्रा की प्रारंभिक शिक्षा प्रयाग में ही हुई । बहुमुखी प्रतिभा की सुभद्रा कुमारी बचपन से ही काव्य रचना करने लगी। 1913 ईस्वी में 9 वर्ष की आयु में सुभद्रा जी की पहली कविता प्रयाग से निकलने वाली पत्रिका 'मर्यादा' में प्रकाशित हुई थी। यह कविता 'नीम के पेड़' पर लिखी गई थी ।कविता रचना के कारण से स्कूल में उनकी बड़ी प्रसिद्धि थी ।

सुभद्रा कुमारी और महादेवी वर्मा दोनों बचपन से ही सहेलियां थी। उन्हें बचपन से ही साहित्य में रुचि थी ।उन्होंने 15 वर्ष की आयु में प्रथम कविता लिखी थीं। उनका स्वभाव बचपन से ही दबंग, बहादुर तथा विद्रोही प्रवृत्ति का था । वह बचपन से ही अशिक्षा, अंधविश्वास आदि कुप्रथाओं के विरुद्ध लड़ी। 20 फरवरी, 1919 ईस्वी में 15 वर्ष की आयु में सुभद्रा का विवाह नवलपुर के सुप्रसिद्ध नाटककार ठाकुर लक्ष्मण सिंह चौहान के साथ हुआ ।

विवाहोपरांत अपनी शिक्षा को जारी रखने के लिए वह बनारस आ गई। विवाह के 2 वर्ष पश्चात ही गांधी जी के असहयोग आंदोलन में हिस्सा लेने के लिए उत्तर आई । सुभद्रा कुमारी असहयोग आंदोलन में हिस्सा लेने वाली पहली महिला थी ।1920-21 ईस्वी में सुभद्रा कुमारी और लक्ष्मण सिंह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य बन गए। दोनों ने नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया और घर-घर में कांग्रेस का संदेश पहुंचाया ।18 वर्ष की आयु में 1923 ईस्वी में जबलपुर के राष्ट्रीय झंडा आंदोलन के समय पहली बार जेल गई। सुभद्रा जी में बड़े सहज ढंग से गंभीरता और चंचलता का अद्भुत संयोग था। वे जिस सहजता से देश की पहली स्त्री सत्याग्रही बनकर जेल जा सकती थी, उसी तरह अपने घर में बाल बच्चों में और गृहस्थों के छोटे-मोटे कामों में भी रमी रह सकती थी ।

लक्ष्मण सिंह चौहान जैसे जीवनसाथी और माखनलाल चतुर्वेदी जैसे पथ -प्रदर्शक पाकर वह स्वतंत्रता के राष्ट्रीय आंदोलन में बराबर सक्रिय भाग लेती रही और कई बार जेल भी गई। काफी दिनों तक मध्य प्रांत

---

* प्रवक्ता इतिहास, राजकीय आश्रम पद्धति इंटर कालेज, लखीमपुर, खीरी

असेंबली की कांग्रेस सदस्या रही और साहित्य व राजनीतिक जीवन में समान रूप से भाग लेकर अंत तक देश की एक जागरूक नारी के रूप में अपना कर्तव्य निभाती रहीं।

सुभद्रा कुमारी चौहान का साहित्यिक जीवन-

सुभद्रा कुमारी चौहान छायावाद कालखंड की प्रमुख कवयित्री थी। छायावाद की समय सीमा सन 1916 से 1936 ई के बीच है। छायावादी युग की तीन काव्य धाराएं हैं। सुभद्रा कुमारी ने दूसरी काव्यधारा में प्रसिद्धि ग्रहण की । सुभद्रा जी ने तत्कालीन समाज और राजनीति से प्रभावित होकर अपने साहित्य की रचना की है। यदि इनकी विशेषताओं की बात की जाए तो कहा जा सकता है कि वे लोक की कवयित्री जनमनमयी हैं, राष्ट्र की कवयित्री हैं,इतिहास ,संस्कृति ,परंपरा एवं आधुनिकता वहन करने वाली एक असाधारण व्यक्तित्व है । इनके काव्यों में हम विभिन्न स्वरूपों को देख सकते हैं, जो जनमानस के मस्तिष्क पर अपनी छाप छोड़ते नजर आते हैं। सुभद्रा जी की कविताओं में हमें वीरत्व से पूर्ण ओजस्वी राष्ट्रीयता की भावना नजर आती है । वे ऐतिहासिक रचना करती नजर आती हैं। जब वे वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई पर कविता लिखती है और वीरत्व का उदाहरण पेश करती हैं -

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी, स्वयं वीरता की अवतार ।
देख मराठे पुलकित होते, उसकी तलवारों के वार ।।

(सुभद्रा कुमारी चौहान ,मुकुल, सुषमा साहित्य मंदिर, जबलपुर पंचम संख्या-1944,पृष्ठ सं.-48)

सुभद्रा जी के काव्य में वीरत्व - बोध वीरों का कैसा हो 'वसंत' नामक कविता में भी झलकता है। इस कविता में बताया गया है कि जब देश अपनी जंग लड़ रहा हो तो उसे समय वीरों के लिए साज श्रृंगार की चीजों में लिप्त होना शोभा नहीं देता है। उसे समय जान की बाजी लगाकर रण क्षेत्र में कूदना ही उनके लिए वसंत के समान है -

कह दे अतीत अब मौन त्याग,
लंके। तुझमें क्यों लगी आग,
ऐ कुरुक्षेत्र ! अब जाग- जाग
बतला अपने अनुभव अनन्त।

(सुभद्रा कुमारी चौहान, मुकुल, सुषमा साहित्य मंदिर, जबलपुर पंचम सं -1944 पृष्ठ सं. -107)

सुभद्रा जी विश्व प्रेम में डूबी रहने वाली महान लेखिका है। इस विश्व प्रेम में व्यक्ति प्रेम, समाज प्रेम ,देश प्रेम ,राष्ट्रप्रेम, दांपत्य प्रेम, वात्सल्य प्रेम, ईष्ट प्रेम तथा प्रकृति प्रेम सब समाहित है। वह अपने विश्व प्रेमरस में मतवाली होकर अपने को भूल जाती है-

मैं प्रसन्न थी, पर प्रसन्नता मेरी आज निराली थी।
मैं ना आज मैं थी यह कोई विश्व प्रेम मतवाली थी ।

(सुभद्रा कुमारी चौहान, मुकुल, सुषमा साहित्य मंदिर, जबलपुर पंचम सं- 1944, पृष्ठ सं-21)

निःसंदेह सुभद्रा जी ने प्रेम की महत्ता को भली-भांति समझा है। वह बंधन युक्त व त्यागमय प्रेम बल देती हैं। वे प्रेम को एक बड़े फ्रेम में देखती है। संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों से वह रमी हुई है। उनके काव्य के माध्यम से हम उनका व्यक्तिगत प्रेम विश्व प्रेम की ओर उन्मुख होता हुआ देख सकते हैं ।कहा जाता है कि विरह की पीड़ा प्रेम को अधिक पवित्र कर देती है । विरह हमें हृदय की विशालता प्रदान करके विश्व एकता की और प्रेरित करता है। कवयित्री आज विश्व प्रेम में मतवाली हो गई हैं। प्रेम की यही उदात्त भावना कवयित्री की सेवा पथ की राह दिखाती है।अतः यह कहना गलत ना होगा कि सुभद्रा जी जितनी राष्ट्रीय कवयित्री हैं, उतनी ही प्रेममयी कवयित्री भी है।

सुभद्रा जी के काव्य में प्रकृति भी विविध रूपों में आई है। कविता में कोयल अपनी कूक से लोक समाज एवं देश को जाग्रत करती नजर आती है । वह स्वयं स्वीकार करती हुई लिखती है -

अपनी कविता कानन की
मैं हूं कोयल मतवाली
मुझे मुखरित हो गाती
उपवन की डाली- डाली ।

(सुभद्रा समग्र, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सं- जनवरी 2000 पृष्ठ सं - 128)

सुभद्रा जी अपने जीवन की गतिविधियों को सदैव प्रकृति से जोड़ती है। ऐसा लगता है जैसे मनुष्य और प्रकृति के बीच का भेद मिट गया हो। कवयित्री प्रकृति के माध्यम से अपनी विरह वेदना को प्रकट करती है । मानवीकरण छायावादी कवियों के मुख्य विशेषता मानी गयी है। प्रसाद ,पंत, निराला व महादेवी वर्मा ने प्रकृति का मानवीकरण करते हुए प्रकृति को मानव की भांति क्रियाकलाप करते हुए दिखाया है। प्रकृति के मानवीकरण की इस परंपरा कवयित्री आगे बढ़ाती है ।सुभद्रा जी अपने काव्य में मानवीकरण के अलावा मानवतावादी रूप में भी प्रकृति - चित्रण किया है । प्रकृति की बात करते हुए यदि वृक्ष को देख तो वह अपना रोम-रोम मनुष्य पर न्योछावर कर देता है। वह प्रेम भाव से छाया, फल- फूल ,शीतलता मनुष्य को देता है। इसी वजह से संपूर्ण सृष्टि को संरक्षण देने वाली प्रकृति सदैव सुभद्रा जी की आकर्षित करती रही है। सन 1919 ईस्वी में 'मर्यादा' पत्रिका में छपी उनकी कविता में बताया गया है कि नीम मनुष्य जाति के लिए कितनी लाभकारी है । वह सबके दुख हर लेता है।

सुभद्रा जी के काव्य में देशभक्ति, राष्ट्र प्रेम, समाज ,व्यक्ति आदि सब आकार देते नजर आते हैं और प्रकृति उसमें रंग भरने का कार्य करती है। इस समय की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवेश पूर्ण रूप से देशभक्ति में ही डूबा हुआ था। साहित्य में भी लेखकों ने बढ़-चढ़कर अपना देश प्रेम दिखाया और लोगों में उत्साह पैदा किया। सुभद्रा जी राजनीति और साहित्य दोनों में अंग्रेजों के खिलाफ मुखर रूप से सबके समक्ष उभर कर आती है । वह अपने युग परिवेश को समझने वाली महान विदुषी थी ।

हम जानते हैं कि कोई भी सजग कवि तत्कालीन युग परिवेश से कटा हुआ नहीं रह सकता।वह जनता के सामने तत्कालीन राजनीति व्यवस्था को कलम के माध्यम से प्रस्तुत करता है ।उन्हीं मे से एक सुभद्रा कुमारी हैं। इनके द्वारा लिखी गई कविताएं हमारे समक्ष इतिहास को भी पुनर्जीवित कर देती है जैसे -1857 ई की क्रांति, जलियांवाला बाग हत्याकांड, आसहयोग एवं सविनय अवज्ञा आंदोलन आदि । सुभद्रा कुमारी की कविता 'झांसी की रानी' भारत वर्ष में एक हुंकार पैदा करती है। बच्चों से लेकर बड़ों के बीच या प्रसिद्ध प्रसिद्ध कविता है-

चमक उठी जब सत्तावन में यह तलवार पुरानी थी।
बुन्देलों हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी हो तो झांसी वाली रानी थी ।

13 अप्रैल,1919 ई को घटित जलियांवाला बाग हत्याकांड में 1000 से ज्यादा लोगों ने अपनी जान गवां दी। इस हत्याकांड की सुभद्रा जी को झकझोर दिया। वे इस पीड़ा को सह नहीं पाई और उनकी संवेदना व पीड़ा शब्दों के माध्यम से फूट पड़ी-

हाथ कांपता, हृदय धड़कता
है मेरी भारी आवाज।
अब भी चौकता है जलियां
वाले का वह गोलंदाज जालियां ।

(कविता संग्रह 'मुकुल' पत्र 70)

1920 ईस्वी में महात्मा गांधी ने खिलाफत तथा रोलेट एक्ट के विरोध स्वरूप असहयोग आंदोलन शुरू करने की घोषणा की । सुभद्रा जी पर इस आंदोलन का प्रभाव इतना पड़ा कि उन्होंने स्कूली शिक्षा को बीच में ही छोड़कर आंदोलन में कूद पड़ी ।इस आंदोलन में महिलाओं ने अहम भूमिका निभाई। नमक कानून के विरोध में गांधी जी ने 1930 ईस्वी में साबरमती आश्रम से दांडी तक यात्रा की और सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरुआत की। सुभद्रा जी इस आंदोलन के समय जेल गई। वह लिखती है-

गोली लाठी चार्ज जेल की
वह भीषण दीवारें
काल -कोठरी दंड यातना
वे कोड़ो की मारे।

(सुभद्रा समग्र, हंस प्रकाशन, प्रथम सं -जनवरी 2000, पृष्ठ 43

1939 इसमें द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया अंग्रेजी सरकार ने कांग्रेस कार्यकारिणी समिति से बिना राय लिए यह कहा कि सभी भारतीय युद्ध में ब्रिटिश सरकार के साथ है। इस निर्णय को कांग्रेस ने विरोध किया । इसके उपरांत गांधी जी के नेतृत्व में 1942 ईस्वी में भारत छोड़ो आंदोलन की शुरुआत हुई। समय बीतने के साथ ही अंग्रेजों पर भारत छोड़ने का दबाव बढ़ने लगा। 1946 ईस्वी में भारत में चुनाव कराए गए इस चुनाव में कांग्रेस ने बड़ी सफलता पाई और मुस्लिम लीग को कम सीटें मिली इससे नाराज होकर मुस्लिम लीग के नेताओं ने पाकिस्तान की मांग की। अंग्रेजों ने इसका फायदा उठाया और मुसलमान को भड़काना शुरू कर दिया। इसके कारण साम्प्रदयिक घटना अत्यधिक बढ़ गई । इस घटना से व्यथित होकर सुभद्रा जी से लिखती है-

अंधकार ! सघनाधकार! हा!
निराधार संस्कार हुआ!
हम असहाय निहत्थों पर,
या कैसा भीषण वार हुआ ।।

अंततः दुख के साथ देश का विभाजन हुआ। कितने ही त्याग, बलिदान, यातनाओं के पश्चात 15 अगस्त, 1947 ईस्वी में भारत आजाद हुआ। निःसंदेह देश की राजनीति और साहित्य में सुभद्रा जी बहुत ही महत्वपूर्ण और मजबूत भूमिका रही है।

सुभद्रा जी ने अपने काव्य के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक परिवेश को भी जनता के सामने प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाओं में भी नायिकाएं रूढ़िग्रस्त समाज को चुनौती देती है ,विरोध करती है। पुरुषों से मित्रता करती है उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर जुलूस करती है, वे आंदोलन में भाग लेती है किंतु कहीं भी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करती है। हम कह सकते हैं कि सुभद्रा जी ने महिला को आगे आने के लिए प्रेरित किया और वह आगे आई किंतु वह समाज की इच्छा अनुसार मर्यादा को लाँघती नहीं है। लेखिका ने अपनी रचनाओं में समाज में व्याप्त कुरीतियों कुप्रथाओं व अंधविश्वासों पर व्यंग्य करने के लिए व्यंग्य शैली का भी प्रयोग किया है।

ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियों एवं राजस्व व्यवस्था ने भारतीयों की कमर तोड़ दिया और उन्हें दरिद्र बना दिया। किसान ,मजदूर, दस्तकार और सामान्य जनता इससे घोर प्रताड़ित थे । सुभद्रा जी इसी आर्थिक परिवेश का एक हिस्सा रही है । वह ब्रिटिश सरकार की इन आर्थिक शोषण को देखकर दुखी और हतप्रभ थी। इस भारतीय अर्थव्यवस्था की दुर्दशा को उन्होंने देखा और समझा।जिसके कारण उनके भीतर आक्रोश पैदा हुआ और वह राष्ट्र को ब्रिटिश सरकार से मुक्त करने के लिए आंदोलन में कूद पड़ी।

सुभद्रा जी की भाषा शैली-

सुभद्रा जी की लेखन शैली सीधी ,सरल व स्पष्ट है ।इस महान लेखिका की भाषा में राष्ट्रीयता, सामाजिकता ,प्रेम, वात्सल्य आदि भाव झलकते हैं ।इन्होंने बिल्कुल आम बोलचाल भाषा के सीधे-साधे वाक्यों का प्रयोग करके अपनी कविता को गढ़ा है। उन्होंने खड़ी बोली को अपने काव्य का आधार बनाया। उस समय हिंदी भाषा देश की भाषा थी, इसलिए स्वतंत्रता पाने का वह राष्ट्रीय आधार बनी ।।सुभद्रा जी ने अपनी भाषा को सम्मान देने के लिए लिखा है-

तू होगी आधार देश की, पार्लियामेंट बन जाने में ।
तू होगी सुख सार देश के ,उजड़े क्षेत्र बसाने में ।
तू होगी व्यवहार देश के, बिछड़े हृदय मिलने में ।
तू होगी अधिकार देशभर को, स्वतंत्रता दिलाने में।

सुभद्रा जी की भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज तथा अनुकरणात्मक शब्दों का खूबसूरत प्रयोग मिलता है । उनकी रचनाओं में भाषा की सरलता व विषय के अनुरूप शब्दों का सटीक चयन मिलता है ।उन्होंने शब्दालंकार और अर्थालंकार शब्दों का भी अपनी भाषा में सशक्त रूप से प्रयोग किया है। भाव की प्रांजलता तथा भाषा की सरलता ने उनके काव्य को एक अलग ऊंचाई प्रदान की है। जो छायावाद में अन्य जगह नहीं दिखाई देती। इस दृष्टि से झांसी की रानी उनकी बहुत ही उत्कृष्ट कविता है। कविता में एक विशिष्ट प्रकार की भाषिक व्यवस्था, बलाघात, तारतत्वता, संगीतात्मकता, वर्ण, ध्वनि,तुक का समन्वय मे दिखाई देता है ।

निष्कर्ष

अतः सुभद्रा कुमारी संबंधी इस समग्र एवं गहन अध्ययन के बाद स्पष्ट हो जाता है कि, सुभद्रा जी व उनकी लेखनी अत्यंत प्रभावशाली एवं मर्मस्पर्शी है। सुभद्रा जी अपने समकालीनों की तुलना में उनका लेखन कार्य सामाजिक वास्तविकता के नजरिए से अधिक प्रामाणिक और मानवीय संवेदना की दृष्टि से समृद्ध है, क्योंकि उनके लेखन में साहित्य और राजनीति का गहरा संबंध है । सुभद्रा जी का साहित्य यह सीख देता है कि अन्य साहित्यकारों को कि उन्हें भी किसी खास विचारधारा, गुटबंदी दलबंदी ,खेमेबाजी आदि से बचना चाहिए और राष्ट्रहित के लिए समाज में व्याप्त उत्पीड़न, शोषण, भ्रष्टाचार,कुरीतियों, अंधविश्वास,अर्थिक बदहाली आदि को समाप्त करने के लिए प्रयास करना चाहिए

संदर्भ सूची-

1- सुभद्रा कुमारी चौहान सृजन एवं चिंतन : सुनीता मंडल, आनंद प्रकाशन कोलकाता । प्रथम संख्या 2017
2- सुभद्रा समग्रः हंस प्रकाशन इलाहाबाद प्रथम संस्करण-जनवरी 2000
3- सुभद्रा कुमारी चौहान : सुधा चौहान,साहित्य अकादमी, नई दिल्ली प्रथम सं. 1998 द्वितीय, 1990
4- सुभद्रा कुमार चौहान, सुषमा साहित मंदिर, जबलपुर पंचम संख्या 1944

◂◂ ▸▸

दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में धर्म का निरूपण

डॉ. अनुराग मिश्र*

विद्वत् समुदाय के सम्मुख किसी **समस्या की उत्पत्ति** तदनन्तर उस समस्या के विषय में जानने की इच्छा **'जिज्ञासा'** और अन्त में जिज्ञासा के फलस्वरूप मस्तिष्क पटल पर उद्भूत उस समस्या के समाधान हेतु विविध **प्रश्न या विचार** ये तीन बिन्दु ही दार्शनिक चिन्तन के प्रेरक हैं। दर्शन शब्द की उत्पत्ति दृश् ज्ञाने धातु से प्रेरणार्थक **ल्युट प्रत्यय** के संयोग से हुई है जिसका तात्पर्य है किसी भी समस्या को जानकर उसके निराकरण हेतु चिन्तन–मनन करना और यथाविधि परिहार हेतु कार्य करना। ऋग्वैदिक काल से ही मानवमात्र इस विषय पर विचार करता चला आ रहा है कि वह व्यक्ति गत एवं साथ ही साथ सामूहिक जीवन धारा (सांसारिक लोक व्यवहार, मानवजगत्) को किस ओर प्रेरित कर सम्पूर्ण विकास और योगक्षेम को प्राप्त कर सके। समस्त दार्शनिक पद्धतियों में इसीलिए ही चारित्रिक शुद्धता पर विशेष बल दिया गया हैं। चरित्र को शुद्ध और परिमार्जित करके मानवमात्र के कल्याण और **परम गन्तव्य** की प्राप्ति हेतु ही कुछ विशेष नियमों की व्यवस्था बनाई गई जिसे 'धर्म' नामक संज्ञा विशेष से जाना जाता है।

भारतीय संस्कृति में धर्म की परिभाषा ''**धारणाद् धर्ममित्याहुः''** दी गई है. अर्थात् जिसके द्वारा प्रजा (मनुष्य) सुरक्षित रहें वह धर्म हैं मानवता के अस्तित्व की रक्षा जिससे हो वह धर्म है। **'धर्म' शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेदः प्रथम मण्डल/22वें सूक्त /18वें** मन्त्र में हुआ है–

''त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः''
''अतो धर्माणि धारयन्''

ऋग्वेद में धर्म के मार्ग को सुगम और कल्याणकारी बताया गया है– ''सुगा ऋतस्य पन्थाः''[1] और धर्म की कल्पना एक नाव के रूप में की गयी है–सत्यस्य नावः सुकृतमपरियन[2] छान्दोग्योपनिषद् में धर्म के स्कन्धत्रय की चर्चा की गई है–''त्रयो धर्म स्कन्धाः'' ये तीन स्कन्ध है–ब्रह्मचारी, तपस्वी एवं गृहस्थ। स्कन्धत्रय के लिए वर्णित कर्तव्यों को करना ही धर्म कहा गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् एवं श्रीमद्भगवद्गीता में भी कर्तव्यनिष्ठा को ही वास्तविक धर्म कहा गया है। पूर्वमीमांसा में **''यागादिरेव धर्मः''** इस प्रकार कहा गया है। वैशषिक सूत्रों में ''यतोऽभ्युदयनिः श्रेयस सिद्धिः स धर्मः'' कहा गया है। तात्पर्य यह है कि जिस कर्तव्य का पालन करने से इहलौकिक (व्यावहारिक) एवं पारमार्थिक द्विविध कल्याण की प्राप्ति हो सके वहीं धर्म है।

सामान्य शब्दों में धर्म वह है जो स्वयं को अप्रिय लगे, अरुचिकर प्रतीत हो उसे दूसरे के लिए लागू न करना। यही मानवता और मनुष्यत्व के चरम लक्ष्य की प्राप्ति का सर्वसुलभ पथ है। इसी धर्म की परिभाषा शास्त्रों में व्यावहारिक और पारलौकिक द्विविध रूपों में की गयी है। भारतीय संस्कृति में यह माना जाता है कि मनुष्यता का लक्ष्य पूर्णता की प्राप्ति है। पूर्णतारूपी परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु मूल्यांनुसंधान नितान्त अपरिहार्य है जो धर्म के माध्यम से ही सम्भव है। इसीलिए कहा गया है कि धर्म से रहित या विरत व्यक्ति पशुवत् है ''धर्मेण हीनः पशुभिः समाना''। धर्म की व्याख्या यदि जीवन या नैतिक मूल्यों के रूप में किया जाए तो हम पाते हैं कि समस्त धार्मिक कर्म (धर्मानुकूल क्रियाकलाप) किसी जाति विशेष, काल विशेष, देश विशेष के लिए न होकर सम्पूर्ण प्राणिमात्र के लिए है। इस प्रकार धर्म की द्विविध कोटि हमारे सम्मुख उपस्थित होती है।

1. सामान्य धर्म की कोटि
2. शास्त्रानुकूल धर्म/वेद विहित

प्रथम कोटि सबके लिए करणीय कर्म है। द्वितीय वेद विहित कर्म है, जिसका पालन करना सबके लिए अनिवार्य नहीं है। आचार्य मनु ने धर्म के चार लक्षण बताये हैं।[3] धर्म के पालन हेतु संस्कार एवं संयम की

* सहायक आचार्य, जी0एस0एस0 पी0जी0 कालेज, कोयलसा, आजमगढ़।
Email : anuragmishra1712190@gmail.com

[1] ऋग्वेद 8.3.13

[2] ऋग्वेद 7.73.1

[3] वेदः स्मृति सदाधार स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं प्राहु साक्षाद्धर्म्मस्य लक्षणम। (मनुस्मृति 2/12)

अपरिहार्यता होती है। अतः यह कहा जा सकता है कि विशेष विधियों तथा मान्यताओं का नाम धर्म नहीं है बल्कि धर्म एक अनुशासन है।[4]

सत्य, अहिंसा का पालन सर्वजन कल्याण हेतु करणीय है। सत्य का पालन ही उपनिषदों में धर्म के प्रथम सोपान के रूप में स्थापित है। "सत्यं वद् धर्म चर[5] तयेतानि जपेदसतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय"[6] "तस्मादेतत्त्रयं शिक्षेद् दमं दानं दयामिति"[7] मानवता से सम्बन्धित धर्म ही वास्तविक धर्म है।[8] कर्तव्यों का पालन और मानवमात्र को आत्मवत् समझना ही सनातन धर्म है। मनुस्मृति के अनुसार वित्त, बन्धु वय, कर्म और विद्या ये पांच मान के स्थान प्रतिपादित किये गये हैं तथा ये अभ्युदय के रूप में धर्म के फल प्रतीत होते हैं।

धर्म एक सर्वव्यापक अभिवृत्ति है। जो आदर्शपूर्ण विषय के प्रति आस्था से उत्पन्न होती है। धार्मिक व्यक्ति इस अभिवृत्ति को सदैव बनाये रखने के लिए तर्क–वितर्क, श्रवण–मनन की भी मदद लेता है। इसलिए धर्म में भी युक्तियों का स्थान है। सृष्टि के आरम्भकाल से ही एक बात तो स्पष्ट है कि मानव किसी न किसी धर्म से अवश्य जुड़ा रहता है। धर्म के बिना उसकी स्थिति ही नहीं हो सकती है। वेदों के अनुसार एक ही मत है जिसे लोग विभिन्न रूप देते हैं।[9] धर्म मानव का स्वभाव गुण है। भारतीय धर्म–परम्परा के अनुसार मानव का सांसारिक जीवन उसके अज्ञान के कारण है परन्तु उसका अपना स्वाभाविक स्वरूप एकदम शुद्ध है। अतः उसका अपना शुद्ध सात्विक स्वरूप उसे उत्प्रेरित करता रहता है कि वह स्वकीय स्वाभाविक रूप सत्–चित् आनन्दस्वरूप को प्राप्त करे। धर्माचरण वह विधि है जिसके आधार पर मानव अपने स्वाभाविक स्वरूप को प्राप्त करता है। इसीलिए कहा जा सकता है कि मानव के अन्दर पूर्णता प्राप्ति की प्रेरणा पायी जाती है। यही कारण है कि मानव अपने को पूर्ण बनाने के लिए धर्म की शरण लेता है और जब मानव स्वयं को शुद्ध धर्म चेतना और इसके अपने विषय अर्थात् परम अतीत में ही सीमित रखता है तो विभिन्न धर्मों के रहने का अवकाश ही नहीं बचता है।

सभी धर्मों का सामान्य विषय परम अतीत है। जिसके संदर्भ में कहा जाता है कि वह है. परन्तु वर्णनातीत है। उसके गुण, स्वभाव, इत्यादि को व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। ब्रह्म का साक्षात्कारकर्ता ब्रह्मविद् हो सकता है, परन्तु वह अनिर्वचनीय वर्णनातीत ही रहता है। किसी भी भाषा के द्वारा साक्षात् रीति से वह व्यक्त नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार गूंगा गुड़ का अस्वादन तो करता है परन्तु उसकी जिह्वा मधुर स्वाद का वर्णन कर पाने में स्वयं को असमर्थ पाती है। ठीक उसी प्रकार ब्रह्मज्ञानी का अनुभव है।

भारतीय धर्म दर्शन प्रायः एकत्ववादी है। धर्म समन्वय के दृष्टिकोण से गीता का सर्वप्रमुख स्थान है। गीता में ईश्वरवाद, रहस्यवाद, एकत्ववाद इत्यादि अनेक धाराओं का सन्तुलन दृष्टिगोचर होता है।[10] भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि जो भक्त श्रद्धा से दूसरे देवताओं की पूजा करते हैं वे भी मुझे ही अविधिपूर्वक पूजते है।[11] सांख्य, योग, शैव, वैष्णव इत्यादि अनेक मत हैं जिन्हें लोग अपनी रूचि के अनुसार विभिन्न रीति से अपनाते हैं। कोई किसी एक को और कोई अन्य को उत्तम समझता है। तो भी इन सभी का एक ही प्राप्ति स्थान, लक्ष्य स्थान है। कुछ मार्ग सीधे और सरल है और कुछ टेढ़े और दुरूह। सत्य सर्वव्यापक होता है।

---

[4] Dr. R. Krishnan & Religion & Society

[5] तैत्तिरीय 01.011.1

[6] वृहदारण्यक

[7] वृहदारण्यक० 5.2.3.

[8] धर्म एवं संस्कृतिः पेज–18, रमा पाण्डेय

[9] एक सद्विप्राः बहुधा वदन्ति। (ऋग्वेद)

भगवद्गीता–9/23–25

[10] जगतः स्थितिकारणम् प्राणिना साक्षात् अभ्युदयनिःश्रेयसहेतुः
यः स धर्मों ब्राह्मणायाः ये वर्णिभिः आश्रमिनि
च श्रेयः अर्थिभिः अनुष्ठीयमानः। (गीताशांकरभाष्यः उपोद्घात)

[11] येऽप्यन्यदेवताभक्त ा यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेदपि मानेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्।। (गीता 9/25)

इस पर किसी जाति या गुण का एकाधिपत्य नहीं माना जा सकता है। वही मूल सत्य ही विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों की नानाविध धर्मपुस्तकों में, अनेक भाषाओं के माध्यम से प्रकाशित किया गया है। जबकि धर्म का क्षेत्र अकथनीय अनुभूति है। धर्म मानव का स्वभाव गुण है, और प्रत्येक मानव में किसी न किसी धर्म को अपनाकर अपनी पूर्णता प्राप्त करने की जन्मजात प्रेरणा पायी जाती है। जब भी किसी व्यक्ति विशेष को यह प्रतीत होता है कि उसे सर्वोत्तम आदर्शरूप प्राप्त हो गया है जो वह प्राप्त करना चाहता था तब वही अवस्था जीवन–परिवर्तन कही जाती है। जीवन परिवर्तन किसी एक अमुक धर्म की निधि नहीं है। सामान्य रूप से धर्म का अभिप्राय है कि जिस व्यवस्था के कारण व्यक्ति में निहित सभी पाशविक वृत्तियाँ उदात्तरूप ले लेती है और व्यक्ति उर्ध्वदिशा में अनुप्राणित हो जाता है। तब यह परिवर्तन व्यक्ति को आत्मकेन्द्रित न करके विश्व कल्याण की भावना से ओतप्रोत कर देता है।

अरवल जिला में सीमांत किसानों की वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन

मनीष कुमार*

सार–

यह शोध अध्ययन बिहार के अरवल जिले में सीमांत किसानों की वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। सीमांत किसान वे होते हैं जिनके पास 1 हेक्टेयर से कम कृषि भूमि होती है और जो मुख्यतः कृषि एवं उससे संबंधित गतिविधियों पर निर्भर रहते हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य सीमांत किसानों की सामाजिक संरचना, आर्थिक स्थिति, समस्याओं तथा सरकारी योजनाओं के प्रभाव का समग्र मूल्यांकन करना है। अध्ययन के लिए 80 सीमांत किसानों का चयन किया गया, जिसमें 40 महिला एवं 40 पुरुष किसान शामिल हैं। डेटा संग्रह के लिए साक्षात्कार, प्रश्नावली एवं प्रत्यक्ष अवलोकन विधियों का उपयोग किया गया। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सीमांत किसानों की सामाजिक स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर है, जहाँ शिक्षा, स्वास्थ्य और जागरूकता का स्तर निम्न पाया गया। विशेष रूप से महिला किसानों की स्थिति अधिक चुनौतीपूर्ण है, जहाँ उनकी भागीदारी कृषि कार्यों में अधिक होने के बावजूद निर्णय लेने की क्षमता सीमित है। अंततः यह अध्ययन दर्शाता है कि सीमांत किसानों की स्थिति में सुधार के लिए बहुआयामी प्रयासों की आवश्यकता है, जिसमें तकनीकी विकास, बाजार सुविधा, महिला सशक्तिकरण एवं प्रभावी नीति क्रियान्वयन शामिल हैं।

प्रमुख शब्द– सीमांत किसान, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, अरवल जिला, बिहार, कृषि विकास, महिला सशक्तिकरण, ग्रामीण विकास, सरकारी योजनाएँ, आय स्रोत, कृषि समस्याएँ

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ लगभग आधी से अधिक जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। बिहार राज्य में कृषि का विशेष महत्व है क्योंकि यहाँ की अधिकांश आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है और आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर रहती है। बिहार के जिलों में अरवल एक छोटा लेकिन कृषि आधारित जिला है, जहाँ किसानों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है। विशेष रूप से सीमांत किसान, जिनके पास 1 हेक्टेयर से कम भूमि होती है, इस क्षेत्र में कृषि संरचना का प्रमुख हिस्सा हैं। आर्थिक दृष्टि से सीमांत किसान छोटी जोत, कम उत्पादन, अनिश्चित आय तथा ऋण के बोझ जैसी समस्याओं से जूझ रहे हैं। कृषि मुख्य आय का स्रोत होने के बावजूद मानसून पर निर्भरता और आधुनिक तकनीकों की कमी के कारण आय स्थिर नहीं है। सरकारी योजनाओं जैसे प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि, मनरेगा एवं राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के माध्यम से कुछ सुधार देखने को मिला है, लेकिन जागरूकता की कमी और कार्यान्वयन की समस्याओं के कारण इनका पूर्ण लाभ नहीं मिल पा रहा है।

अरवल जिले की भौगोलिक स्थिति गंगा के मैदानी क्षेत्र में होने के कारण यहाँ की भूमि उपजाऊ है, किन्तु सिंचाई संसाधनों की कमी, मानसून पर अत्यधिक निर्भरता और आधुनिक कृषि तकनीकों के अभाव के कारण कृषि उत्पादन अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुँच पाता। परिणामस्वरूप, सीमांत किसानों की आय कम और अनिश्चित बनी रहती है। कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार. (2022) सीमांत किसानों की समस्याएँ बहुआयामी हैं, जिनमें सामाजिक, आर्थिक और संरचनात्मक कारक शामिल हैं। अरवल जिले के संदर्भ में विशेष अध्ययन सीमित हैं, इसलिए यह शोध इस क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत करता है। अरवल जिला (बिहार) में सीमांत किसानों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति से संबंधित विभिन्न शोधों, रिपोर्टों और अध्ययनों का अवलोकन निम्न प्रकार से किया गया है।[1]

सिंह, आर. एवं शर्मा, पी. (2018) कई अध्ययनों में यह पाया गया है कि भारत में सीमांत किसानों की संख्या अत्यधिक है और उनकी आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर बनी हुई है। कृषि जनगणना और विभिन्न सरकारी रिपोर्टों के अनुसार, देश में लगभग 80 प्रतिशत से अधिक किसान सीमांत श्रेणी में आते हैं, जिनकी भूमि जोत बहुत छोटी होती है। इससे उनकी आय सीमित रहती है और वे आर्थिक असुरक्षा का

* शोधार्थी, स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
E-mail : manishv9097@gmail.com, Mob. 9097367136

सामना करते हैं।[2] सीमांत किसानों की स्थिति केवल आर्थिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी चुनौतीपूर्ण है। शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण और सामाजिक जागरूकता के क्षेत्र में इनकी स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर है। ग्रामीण समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का प्रभाव होने के कारण महिला किसानों की भूमिका महत्वपूर्ण होने के बावजूद उन्हें उचित मान्यता और निर्णय लेने का अधिकार नहीं मिल पाता।

कुमार, ए. (2019) बिहार के संदर्भ में किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ कृषि मुख्यतः मानसून पर निर्भर है और सिंचाई सुविधाओं की कमी के कारण उत्पादन में अस्थिरता बनी रहती है। शोध में यह भी पाया है कि सीमांत किसानों की आय का स्तर कम होने के कारण वे अक्सर कर्ज के जाल में फँस जाते हैं और साहूकारों पर निर्भर रहते हैं।[3]

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, भूमि विखंडन और रोजगार के सीमित अवसरों ने सीमांत किसानों की समस्याओं को और अधिक जटिल बना दिया है। सूखा, बाढ़ और अनियमित वर्षा जैसी प्राकृतिक आपदाएँ किसानों की आय को प्रभावित करती हैं, जिससे उनका जीवन स्तर अस्थिर बना रहता है। कई बार किसानों को अपनी आजीविका के लिए अन्य राज्यों में पलायन करना पड़ता है, जो सामाजिक और पारिवारिक संरचना को भी प्रभावित करता है। ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार. (2021) सामाजिक दृष्टि से, विभिन्न अध्ययनों में यह उल्लेख किया गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति कमजोर है। विशेष रूप से महिला किसानों की स्थिति अधिक चुनौतीपूर्ण पाई गई है। महिलाओं की कृषि कार्यों में भागीदारी अधिक होने के बावजूद उन्हें निर्णय लेने का अधिकार सीमित रूप में मिलता है।[4]

बिहार सरकार, कृषि विभाग (2023) स्वयं सहायता समूहों पर किए गए अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला है कि इन समूहों ने महिलाओं के सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्वयं सहायता समूह के माध्यम से महिलाओं को वित्तीय सहायता, प्रशिक्षण और सामाजिक पहचान प्राप्त हुई है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है।[5]

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (2019) सरकारी योजनाएँ जैसे प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि, मनरेगा और राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन ने सीमांत किसानों को आंशिक राहत प्रदान की है। हालांकि, इन योजनाओं का प्रभाव पूरी तरह से सफल नहीं हो पाया है, क्योंकि जागरूकता की कमी और कार्यान्वयन की समस्याएँ बनी हुई हैं।[6] नाबार्ड (2020) कृषि क्षेत्र में तकनीकी विकास और फसल विविधीकरण को लेकर किए गए अध्ययनों में यह सुझाव दिया गया है कि यदि सीमांत किसानों को आधुनिक कृषि तकनीकों, उन्नत बीजों और बाजार सुविधाओं तक पहुँच प्रदान की जाए, तो उनकी आय में वृद्धि संभव है।[7] सीमांत किसानों का कृषि कार्य छोड़कर अन्य व्यवसायों की ओर झुकाव एक सामाजिक–आर्थिक बदलाव का संकेत है। जिसमें आर्थिक कारण जैसे–अल्प आय भी शामिल हैं, सीमांत खेती से प्राप्त आय जीवन–निर्वाह के लिए अपर्याप्त होती है। उत्पादन लागत में वृद्धि जिसमें बीज, खाद, कीटनाशक और सिंचाई की लागत बढ़ने से लाभ घटा है। ऋण और कर्ज के कारण भी कृषि कार्य में घाटा होने से किसान ऋणग्रस्त हो जाते हैं।

विश्व बैंक (2020) ने प्राकृतिक कारण जैसे– जलवायु परिवर्तन अनिश्चित वर्षा, सूखा, बाढ़ आदि ने खेती को जोखिमपूर्ण बना दिया है। साथ ही भूमि की उर्वरता में गिरावट के कारण जैसे लगातार उपयोग के कारण भूमि कमजोर होती जा रही है। सामाजिक कारणः श्रम का अभाव जैसे ग्रामीण क्षेत्रों से युवाओं का पलायन शहरी क्षेत्रों की ओर बढ़ा है। सीमांत किसानों में सम्मान की कमी कृषि को कम प्रतिष्ठा वाला कार्य समझा जाने लगा है।[8] अवसरों की उपलब्धता के कारण भी शहरों में रोजगार, निर्माण कार्य, छोटे उद्योग, दुकानदारी आदि में मौके बढ़े हैं। साथ ही सरकारी योजना जैसे स्वरोजगार योजनाओं व स्टार्टअप को बढ़ावा मिलने से खेती से बाहर निकलने का विकल्प सीमांत किसानों को मिल रहा है। शिक्षा और जागरूकता आने से भी युवा सीमांत किसान शिक्षा प्राप्त कर अन्य क्षेत्रों में जा रहें हैं। हालांकि, सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं जैसे प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि, मनरेगा, और राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के माध्यम से किसानों की स्थिति सुधारने के प्रयास किए जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त, स्वयं सहायता समूहों और किसान उत्पादक संगठनों के माध्यम से किसानों को संगठित करने और उनकी आय बढ़ाने की दिशा में कार्य हो रहा है।

अध्ययन प्रश्न–

अरवल जिले में सीमांत किसानों की वर्तमान सामाजिक स्थिति कैसी है? साथ ही किसानों की आर्थिक स्थिति एवं आय के मुख्य स्रोत क्या हैं?

2. क्या महिला और पुरुष सीमांत किसानों की सामाजिक स्थिति में कोई अंतर है?
3. सरकारी योजनाओं का सीमांत किसानों पर क्या प्रभाव पड़ा है?

अध्ययन का उद्देश्य– इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य अरवल जिले के सीमांत किसानों की वर्तमान सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का समग्र विश्लेषण करना है, ताकि उनकी समस्याओं को समझकर प्रभावी समाधान सुझाए जा सकें। यह अध्ययन न केवल नीति निर्माताओं के लिए उपयोगी होगा, बल्कि ग्रामीण विकास और कृषि सुधार के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान देगा।

नमूना चयन– इस अध्ययन में नमूना चयन को संतुलित एवं प्रतिनिधिक बनाने का प्रयास किया गया है। जिसमें 80 नमूना आकार सीमांत किसान थें –लैंगिक विभाजन 40 महिला सीमांत किसान और 40 पुरुष सीमांत किसानों को नमूना चयन विधि जो कि यादृच्छिक उद्देश्यपूर्ण नमूना का मिश्रित उपयोग किया गया है। नमूना चयन की प्रक्रिया अरवल जिले के विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों/गाँवों का चयन किया गया। प्रत्येक चयनित गाँव से सीमांत किसानों की सूची तैयार की गई। सूची में से महिला एवं पुरुष किसानों को समान संख्या में चुना गया। इसकी विशेषता सभी उत्तरदाता 1 हेक्टेयर से कम भूमि वाले किसान हैं। साथ ही विभिन्न आयु वर्ग, सामाजिक वर्ग और आर्थिक पृष्ठभूमि को शामिल किया गया है। इसमें महिला उत्तरदाताओं में SHG से जुड़ी एवं गैर–जुड़ी दोनों श्रेणियाँ शामिल हैं।

अध्ययन पद्धति–

क). यह अध्ययन मुख्यतः वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। इसमें प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के डेटा का उपयोग किया गया है।

ख). प्राथमिक डेटा के अंतर्गत सीमांत किसानों से साक्षात्कार, प्रश्नावली और प्रत्यक्ष अवलोकन के माध्यम से जानकारी एकत्र की गई। द्वितीयक डेटा विभिन्न सरकारी रिपोर्टों, शोध पत्रों, समाचार पत्रों और इंटरनेट स्रोतों से प्राप्त किया गया।

(ग). अध्ययन क्षेत्र अरवल जिला है, जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों के किसानों को नमूना के रूप में चयनित किया गया। डेटा का विश्लेषण गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनों विधियों से किया गया है।

परिणाम–

सारणी–1

महिला एवं पुरुष सीमांत किसान समुहों की समाजिक एवं आर्थिक स्थिति में वार्षिक के प्राप्तांकों की सार्थकता माध्य

सीमांत किसान समूह	संख्या	माध्य	प्रमाणिक विचलन	टी	सार्थकता का स्तर
महिला	40	43..07	6.85	1.63	p<0.01
पूरूष	40	42.76	7.04		

सारणी–1 के अनुसार महिला एवं पुरूष सीमांत किसान समुहों की समाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर प्राप्तांकों में सार्थक अन्तर नहीं (टी =3.52, df=198, p<0.05NS) पाया गया। विश्वास स्तर; सार्थकता स्तर पर प्राप्त सारणी मान प्राप्त हैं। अतः सीमांत किसान समूहों में सार्थक अन्तरं पाया गया। अधिकांश किसान सीमांत और लघु वर्ग के अंतर्गत आते हैं। विशेषकर महिला सीमांत किसानों को कई सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह पता लगाना है कि 58 महिला और 142 पुरुष सीमांत किसानों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में कोई महत्वपूर्ण अंतर है या नहीं। इस पर सीमांत किसानों कि वार्षिक आय, भूमि स्वामित्व, शिक्षा स्तर, सरकारी योजनाओं से लाभ, स्वास्थ्य सुविधा तक पहुँच एवं ऋण का बोझ के आधार पर उपकल्पना निर्धारण को देखना रहा।

चर्चा – इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अरवल जिले के सीमांत किसान सामाजिक एवं आर्थिक दोनों स्तरों पर कई चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। सामाजिक रूप से शिक्षा, स्वास्थ्य और लैंगिक असमानता जैसी समस्याएँ प्रमुख हैं, जबकि आर्थिक रूप से छोटी जोत, कम उत्पादन और अस्थिर आय मुख्य बाधाएँ हैं। हालांकि, सरकारी योजनाओं और सामुदायिक संगठनों के माध्यम से सुधार की दिशा में प्रयास किए जा रहे हैं, लेकिन इन प्रयासों का प्रभाव सीमित है। इसका मुख्य कारण जागरूकता की कमी, संसाधनों का अभाव और योजनाओं का सही कार्यान्वयन न होना है। यदि किसानों को उचित प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता और बाजार की बेहतर सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ, तो उनकी स्थिति में उल्लेखनीय सुधार हो सकता है। इसके अलावा, महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने और उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त बनाने से सामाजिक विकास को भी गति मिलेगी। इस प्रकार, समग्र विकास के लिए बहुआयामी प्रयासों की आवश्यकता है।

सुझाव – आधुनिक कृषि तकनीकों का प्रशिक्षण दिया जाए। सिंचाई सुविधाओं का विस्तार किया जाए। किसानों को बाजार से सीधे जोड़ने की व्यवस्था की जाए। महिला सशक्तिकरण कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाए। स्वयं सहायता समूहों और थ्च्े को मजबूत किया जाए। डिजिटल और वित्तीय साक्षरता बढ़ाई जाए। साथ ही सरकारी योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाए।

संदर्भ सूची–

1. भारत सरकार कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय. (2022) कृषि सांख्यिकी एवं किसान स्थिति रिपोर्ट. नई दिल्ली।
2. भारत सरकार, ग्रामीण विकास मंत्रालय, (2021) मनरेगा वार्षिक रिपोर्ट. नई दिल्ली।
3. बिहार सरकार, कृषि विभाग. (2023) बिहार कृषि विकास रिपोर्ट. पटना।
4. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (NSSO, 2019) कृषि परिवारों की स्थिति का सर्वेक्षण. नई दिल्ली।
5. नाबार्ड (2020) ग्रामीण वित्त एवं कृषि पर रिपोर्ट. मुंबई।
6. सिंह, आर. एवं शर्मा, पी. (2018) भारत में सीमांत किसानों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति. ग्रामीण विकास जर्नल, 37(2), 245–260।
7. कुमार, ए. (2019) बिहार में कृषि चुनौतियाँ एवं किसानों की आय. भारतीय कृषि अर्थशास्त्र पत्रिका, 74(3), 310–325।
8. विश्व बैंक (2020) भारत में कृषि एवं ग्रामीण विकास. वाशिंगटन डी.सी. 89–95।

श्यौराज सिंह ‘बेचौन’ के काव्य में सामाजिक सरोकार

मनीष कुमार साव*

शोध सारांश :-

समकालीन हिंदी साहित्य परंपरा में श्यौराज सिंह ‘बेचैन’ महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। इन्होंने समकालीन हिंदी साहित्य परम्परा में दलित विमर्श को अपने लेखन के माध्यम से समाज के सम्मुख रखा है। जिस समाज की परछाई छूने से भी लोग कतराते है, उनके संघर्ष, पीड़ा और साहस को अपनी लेखनी में स्थान दिया है। उन्होंने स्त्रियों के साथ हो रहे अत्याचारों पर भी तंज कसा और पितृसत्तात्मक समाज पर प्रहर किया है। इन्होंने बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर कि विचारों को आत्मसात कर शोषित-पीड़ित दलित जातियों एवं स्त्रियों को अपने मानवीय अधिकारो के प्रति जागरूक किया। अंग्रेजी सत्ता के बाद जिस प्रकार भारतीय राजनेताओं ने ध्रुवीकरण की राजनीति के तहत दलितों का शोषण किया है वह बहुत चिंताजनक है। इन राजनेताओं के चरित्र का उद्‌घाटन बेचैन जी ने अपनी रचनाओं में किया हैं।

आधुनिक युग के साहित्यकारों ने मनुवादी मानसिकता का घोर विरोध किया है। अपनी वैचारिकी के बल पर साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, शरण कुमार लिम्वाले , सूरजपाल चौहान ने दलित साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि का निर्माण किया है। इसी क्रम में श्यौराज सिंह ‘बेचैन’ ने दलित समाज की चेतना को जीवंत करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। जब तक समाज में जातिगत भेदभाव, नारी उत्पीड़न का शोषण चक्र चलता रहेगा, तब तक श्यौराज सिंह ‘बेचैन’ की रचनाएँ समाज में अधिक जीवंत एवं प्रासंगिक होती जाएगी।

बीज शब्द - दलित विमर्श, जातिवाद, पितृसत्ता, वर्चस्ववादी व्यवस्था, पूंजीवाद।

भारत एक विशाल लोकतांत्रिक देश है। आधुनिक भारत में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की स्थापना के लिए बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर ने संविधान का सृजन किया, किंतु भारतीय समाज के जातिवादी एवं पितृसत्तात्मक विचार के पोषक लोगों को यह नागवार गुजरा। वे मनु द्‌वारा स्थापित व्यवस्था को ही कायम रखना चाहते थे, शायद यही कारण है कि आजादी के इतने वर्ष बाद भी दलितों के शोषण में किसी भी तरह का कोई बदलाव नहीं आया है। वर्तमान समय में पूंजीवादी एवं वर्चस्ववादी व्यवस्था ने इन शोषण चक्र को अधिक मजबूत कर दिया हैं। इन शोषण एवं दमन चक्रों को श्यौराज सिंह ‘बेचैन' ने अपनी रचनाओं में दिखाने का प्रयास किया है। श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने रचनाओं के माध्यम से दलित समाज की राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक और अस्मिता की तलाश में भटकते हुए लोगों का सांगोपांग अध्ययन किया है।

हिंदी दलित साहित्य के क्षेत्र में डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन' का नाम किसी परिचय का मुहताज नहीं है। उन्होंने कविता, कहानी, आलोचना, आत्मकथा, शोध, पत्रकारिता आदि क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान दिया है। उनका सम्पूर्ण सृजन साहित्य दलित समाज के साथ हुए अन्याय एवं अत्याचारों को प्रतिबिंबित करता है। वे समय समय पर दलितों के दुःख -दर्द व अन्य प्रश्नों को समाज के समक्ष उठाते रहे हैं और उनका चित्रण भी बड़े मार्मिक ढंग से करते रहे हैं। श्यौराज सिंह ‘बेचैन’ ने बाल्यावस्था से ही विभिन्न प्रकार के संघर्षों के सामना किया है। समाज के साथ-साथ शिक्षण संस्थाओं एवं अध्यापकीय जीवन में भी उन्हें विभिन्न प्रकार के बहिष्कारों का सामना करना पड़ा है। समाजिक यथार्थ से जुड़ी विभिन्न विसंगतियाँ एवं विद्रूपताएँ उन्हें अंदर ही अंदर कचोटती रही हैं। समाज में व्याप्त दलितों की उपेक्षा व दुर्दशा की समस्याओं को लेकर एक गहरी चिंता रही है।

डॉ. श्यौराज सिंह ‘बेचैन’ जी ने स्वयं अपने जीवन में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दंश को झेला और महसूस किया है। वे भारतीय सामाजिक संरचना से भलीभांति परिचित हैं। स्वतंत्रता पूर्व दलित जीवन की दारुण दशा की

* हिंदी प्रवक्तां, पीएम श्री स्कूल जवाहर नवोदय विद्यालय मलकानगिरि, ओडिशा
Email: manishkumarshaw16396@gmail.com,9091433076

गहन अनुभूति जो उनके मन और मस्तिष्क में थी वह स्वाधीनता के बाद भी वह बनी रही। स्वाधीन भारत में दलितों की स्वाधीनता पर विचार करते हुए बेचैन जी को लगता है कि केवल शोषण के स्वरुप में परिवर्तन हुआ है न कि शोषण समाप्त हुआ है। इसीलिए वह कहते हैं कि यह आजादी केवल कुछ खास लोगों की आजादी है, जो बाह्य रूप से देखने पर सबकी लगती है, परंतु वह सबके लिए उपलब्ध नहीं हैं :-

"मिली सियासियों को आजादी हम - समाज ने क्या पाया? मिली विरासत में बदहाली घोर गुलामी का साया। छुआ-छूत की शक्लें बदली - मगर हिकारत बन रही-ऊपर-ऊपर मेल हो गया भीतर-भीतर ठनी रही।"[1]

डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने समाज की जातिगत वर्णव्यवस्था से परिचित थे। वे जातिगत भेदभाव और उसके लाभ-हानि को भी जानते थे।जातिगत श्रेष्ठता के कारण जो फ़ायदा उच्च वर्ण के लोग उठाते थे , उसकी अभिव्यक्ति भी उनकी कविताओं में स्पष्ट रूप से हुई है :-

"तुमने कहा कि - / तुम्हें हक नहीं है / गाँव में बसने का / और हमने गाँव से बाहर / शहरों को स्लम्स तक / उजड़ी-उजड़ी बस्ती / बड़े-उखड़े घर।"[2]

दलित समाज को सभी प्रकार से हीन भाव महसूस करवाया गया। उनके साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार किया गया। उन्हें मुख्यधारा से हमेशा दूर रखने का प्रयास किया गया। दलित समाज के लोगों से ही नहीं बल्कि उनकी परछाई तक से दुर्व्यवहार किया गया, बेचैन जी अपनी रचना को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए कहते है :-

" भागते रहे दूर-दूर कहीं छू न जाएँ ।/ कहीं परछाई हीन पड़ जाए तुम्हारे ऊपर ।/ जहाँ हम बैठे वहाँ तुमने 'गौमूत्र' का छिड़काव किया ।/ जिस मूर्ति की हमने अनावृत्त किया तुमने उसे दूध से धोया ।"[3]

समाज की आधी आबादी की स्थिति आज भी बेहद दुर्भाग्यपूर्ण हैं । श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने स्त्रियों की स्थिति पर भी चिंता व्यक्त की है। स्त्रियों के समाजिक अधिकारों का जिस प्रकार हनन किया जा रहा है उसके प्रति भी बेचैन जी ने अपनी चिंता प्रकट की है। संवैधानिक अधिकारो के बावजूद स्त्रियों को अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, विधवा व्यथा, और घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ रहा है -

"विधवाओं की व्यथा सुनी/ गम जाना परित्यक्ता का । / दबा लिया विद्रोह हृदयगत/ आँखों से सागर छलका/ फिर दहेज संकट देखा/ आत्महनन महिलाओं का/ देखा गठबंधन वृद्धों संग/ निर्धनतम बालाओं का ।"[4]

भारत केवल वर्णव्यवस्था में नहीं बल्कि धर्म, संप्रदाय, लिंग आदि में बंटा हुआ है । भारतीय समाज हिंदू, मुस्लिम, जैन, पारसी आदि रूपों में विभक्त है और उनकी भी कई शाखाएं है । इन सब विभक्ति के पीछे राजनीति का भी अहम योगदान है । कई बार राजनीति धर्म का संचालन करती है और कई बार धर्म राजनीति को अपना शिकार बनाती है । जिस स्वर्णिम देश की कल्पना में शहीदों ने इतनी कुर्बानिया दी है, वह आज भी संभव होता नहीं दिख रहा है:-

"ये हिंदू हैं / वे मौमिन हैं ।/ ये अछूत हैं / वे ब्राह्मण हैं / अनगिन फ़र्क़ / बनाकर रक्खे / आजादी के बाद देश में / कितने नर्क बनाकर रक्खे ।"[5]

श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने ग्रामीण व्यवस्था का बहुत बारीकी से चित्रण किया है । श्यौराज सिंह 'बेचैन' जी का गाँव नागार्जुन के गाँव की तरह आनंददायक जगह नहीं है और न ही पंत की ग्रामवासिनी जैसा । बेचैन का गाँव वर्णव्यस्था की मानसिकता से ग्रस्त गाँव के हेय का शिकार गांव है। जहाँ दलित की स्थिति बेहद दयनीय है । उनके अनुसार दलितों का गाँव किसी कारगर से कम नहीं है, जो इस प्रकार है :-

"बस्तियों से बाहर बस्ती / गाँव से बाहर गाँव / रहो वहाँ/ जहाँ न कहीं छत / न कोई घर / न कोई आँगन/ न कोई छाँव / कारगार का / पर्याय गाँव ।"[6]

समाज में दलितों के साथ हो रहे अत्याचार की शुरुवात कब से हुई इसका अनुमान लगाना कठिन है। अंग्रेजी सत्ता आने के बाद दलितों के हक में कुछ अधिकार तो ज़रूर आएँ परंतु उन कठिनाइयों का समूल नाश नहीं हो पाया था। आगे चलकर स्वाधीनता आंदोलन से उन्हें उम्मीद थी कि आजादी के बाद उनके मानवाधिकारों और सुविधाओं की बात होगी परंतु

दुर्भाग्य की बात है की आजादी के इतने वर्ष बाद भी उसमें संतोषजनक सुधार देखने को नहीं मिला है। निचले तबके के श्रमिक वर्ग के लोग आज भी मूलभूत संसाधनों से वंचित है. बेचैन जी ने श्रमिकों की दृष्टि से आजादी को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है :-

"आजादी रह गई अधूरी/ गोया झूठा खेल हुआ/ श्रमिकों की दुर्दशा बढ़ गयी/ मिशन मुक्ति का फेल हुआ।"[7]

भारत की बहुत बड़ी ग्रामीण आबादी आज भी रोजगार, भोजन, स्वस्थ सुविधाओं से वंचित है. सरकारी योजनाएं भी कागजों पर बनकर ख़त्म हो गई है. शोषक वर्ग ने लोकतंत्र में भी अपनी जड़े जमा ली है. शोषण आज भी विद्यमान है बस उसका स्वरूप बदल गया है. शायद यही कारण है कि संसाधनों पर सामंती शोषकों ने अपना अधिकार जमा लिया है और आम जानता आज भी जी तोड़ मेहनत के बाद भी पेट नहीं भर पा रहे है. बेचैन जी कहते है :-

"अभी उदासी है गाँव में, है मज़दूर किसान दुःखी।/ फुटपाथों पर आकर देखो ।/ असली सूरत भारत की ।।/ हाय भूख से टूट रहे दम, / पेट - पीठ मिल एक हुए। / इधर मरी इच्छा के मातम, उधर मोद-आमोद हुए ।।/ स्कीमें काग़ज़ी रह गयीं, / वायदे झूठे आम हुए ।/ भूखे पेट जिस्म बिकते हैं, / सपने सब नीलाम हुए ।।/ इकतरफ़ा दौलत के दम पर, / सुख - आनंद लिया सारा/ तुन -तुन...तुन -तुन-तुनन...इकतारा।।"[8]

श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने अपनी आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' में अपने जीवन संघर्ष को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने अपनी जीवन में शिक्षा को महत्वपूर्ण माना है। जिस शिक्षा व्यवस्था के बल पर उन्होंने अपने मुकाम को हासिल किया, एक नई पीढ़ी को प्रेरणा देने का काम की है। आज वही शिक्षा व्यवस्था कहीं न कहीं बर्बादी कि कगार पर है। इसका दुष्परिणाम यह होगा कि सुविधा संपन्न लोग आसानी से देश के अंदर या फिर बाहर शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे। परंतु वे आदिवासी, दलित, अल्पसंख्यक एवं सामाजिक रूप से पिछड़े बच्चें अशिक्षित रह जाएँगे। बेचैन जी ने वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पर प्रहार करते हुए कहा है :-

"बंद हो गए/ सरकारी स्कूल/ और खुल गये/ स्ववित्त पोषित/ निजी संस्थान-दुकान/ अब कैसे बढ़ पाएंगे/ दलित आदिवासी/ निर्धन पिछड़े/ और अल्पसंख्यक बच्चे ।/ कैसे इनके - / अच्छे दिन आएँगे?"[9]

भारत की राजनीति करने वाले नेताओं पर भी उन्होंने अपना आक्रोश प्रकट किया है। नेताओं ने केवल अपने सत्ता स्वार्थ में समाज को महंगाई, बेरोजगारी एवं धार्मिक उन्माद में धकेल दिया है. नेताओं ने अपनी कुर्सी के लिए मंडल और कमंडल का प्रपंच रचते है। दलितों और पिछड़ों के घर तक जलाने से नहीं कतराते है। सत्ता के लिए किसी भी हद तक गुज़रने को तैयार रहते है। इन्हीं सांसदों पर व्यंग करते हुए बेचैन जी लिखते है :-

"हम होने वाले सांसद है। / महंगाई, तबाही बढ़ती रहे। / जनता आपस में लड़ती रहें। / मंडल और कमंडल चलते रहें। / दलितों के गांव घर जलते रहें। / सिंकती है सियासत की रोटी। / यह देख के हृदय गदगद है। / हम होने वाले सांसद हैं।"[10]

श्यौराज सिंह 'बेचैन' जी बेहद भावुक एवं संवेदनशील कवि हैं। उन्होंने अपने पारिवारिक जीवन में स्त्रियों को कठिनाइयों को नज़दीक से देखा है। वे अपनी माँ के संघर्ष के साक्षी रहें है। वे स्त्रियों की पीड़ा, उनके संघर्षों, उन्हीं उम्मीदों, चिंताओं से परिचित थे। स्त्रियों के साथ हो रहे बेमेल विवाह, दहेज प्रथा, आत्म-हनन आदि से बेचैन जी बेहद क्रोधित थे।इसलिए समाज की स्त्रियों की समस्या और उसके निराकरण का कोई रास्ता न पाकर बेहद दुखी होते है और अपनी चिंता व्यक्त करते हुए कहते है :-

"विधवाओं की व्यथा सुनी, / ग़म जाना परित्याग का। / दबा लिया विद्रोह हृदयगत, / आँखों से सागर छलका।। / फिर दहेज का संकट देखा, / आत्म - हनन महिलाओं का। / देखा गठबंधन वृद्धों संग,/ निर्धनतम बालाओं का।। / जी करता है क़िस्सा कह दें/ उन मनहूस पिताओं का/ जो हक़ खा जाते हैं ज़ालिम/ अपनी ही कन्याओं का।"[11]

निष्कर्षतः हम देखे तो श्यौराज सिंह 'बेचैन' की कविताओं में सामाजिक चिंता स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। उनकी कविताओं में केवल दलितों का ही जिक्र नहीं है, बल्कि समाज के उन सभी लोगों की आवाज है जो किसी न किसी प्रकार सामंती वर्ग के शोषण का शिकार हैं। बेचैन जी ने अपनी कविताओं में आजादी के बाद की सामाजिक दशा का भी बेहद बारीकी

से चित्रण किया है। कवि केवल भूत एवं वर्तमान काल में नहीं जीता है बल्कि अपने समाज के भविष्य के दिशा को लेकर भी चिंतित रहता है। उनकी कविताओं में स्त्री, दलित, आदिवासी, मजदूर तथा किसान के अधिकार की आवाज है। वही दूसरी ओर शोषक और राजनीतिज्ञों के काले करतूतों से पर्दा भी उठती है। भारत के समाज को एक सही दिशा में ले जाने के लिए बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर ने जिस समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व एवं न्याय की बात की थी, उन्हीं आदर्शों को बेचैन जी ने बड़ी सजगता और तत्परता अपनी कविता के माध्यम से समाज को नई दिशा दिखाने का काम करती है। सामाजिक विसंगतियों पर बेचैन जी ने लगातार प्रहार किया है। जब तक सामाजिक अधिकार, संसाधनों पर समान अधिकार समाज के सबसे निचले तबके तक के लोगों तक नहीं पहुंच जाएगा। तब तक बेचैन जी की कविता समाज में प्रासंगिक बनी रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. सिंह 'बेचैन', श्यौराज, चमार की चाय, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ -80.
2. सिंह 'बेचैन', श्यौराज, भोर के अँधेरे में, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2018, पृष्ठ -113.
3. सिंह 'बेचैन', श्यौराज, भोर के अँधेरे में, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2018, पृष्ठ -113.
4. सिंह 'बेचैन', श्यौराज, चमार की चाय, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ -46.
5. सिंह 'बेचैन', श्यौराज, नई फसल कुछ अन्य कविताएँ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ -139.
6. सिंह 'बेचैन', श्यौराज, भोर के अँधेरे में, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2018, पृष्ठ - 71.
7. सिंह 'बेचैन', श्यौराज, चमार की चाय, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ -53.
8. सिंह 'बेचैन', श्यौराज, चमार की चाय, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ -61.
9. सिंह 'बेचैन', श्यौराज, भोर के अँधेरे में, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2018, पृष्ठ -217.
10. सिंह 'बेचैन', श्यौराज, नई फसल कुछ अन्य कविताएँ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण -2014, पृष्ठ -147.
11. सिंह 'बेचैन', श्यौराज, चमार की चाय, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ -46.

भोजपुरी एवं बांग्ला लोकगीतों में नारी प्रतिवाद के स्वर : एक तुलनात्मक अध्ययन

संजय साव*

"লোকসাহিত্য প্রতিবাদের হাতিয়ার অর্থাৎ Weapon of folk Protest"

\- মানস মজুমদার

शोध सारांश –

यह शोध भोजपुरी और बांग्ला लोकगीतों में नारी के प्रतिरोधी स्वरों की पहचान, विश्लेषण और तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित है। लोकसाहित्य, विशेषकर लोकगीत, समाज की सामूहिक चेतना का दर्पण होते हैं, जिनमें स्त्री के अनुभव, पीड़ा, संघर्ष और प्रतिवाद के स्वर स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त होते हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि दोनों भाषाई क्षेत्रों में स्त्रियाँ किस प्रकार सामाजिक कुरीतियों एवं कुप्रथाओं के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाती हैं। इस अध्ययन में यह देखा जाएगा कि लोकसाहित्य जनप्रतिवाद का माध्यम कैसे बनता है, स्त्री-प्रतिवाद किन रूपों में प्रकट होता है, वह किनके विरुद्ध और किन सामाजिक परिस्थितियों में उभरता है; इसके लिए भोजपुरी एवं बांग्ला लोकगीतों को उपजीव्य बनाकर तुलनात्मक पद्धति के सहारे इनका विश्लेषण किया जाएगा।

तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो दोनों ही परंपराओं में नारी प्रतिवाद के स्वर समान रूप से विद्यमान हैं, किन्तु उनकी अभिव्यक्ति के तरीके में भिन्नता है। इस प्रकार यह शोध यह स्थापित करता है कि लोकगीत केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ और स्त्री-चेतना के सशक्त दस्तावेज़ भी हैं, जिनमें नारी का प्रतिरोध एक महत्वपूर्ण सामाजिक एवं वैचारिक अभिव्यक्ति के रूप में उभरता है।

बीज शब्द – लोकसाहित्य, बांग्ला लोकगीत, भोजपुरी लोकगीत, जनप्रतिवाद, नारी प्रतिवाद, पितृसत्तात्मक समाज, कुलीन प्रथा, बहुविवाह, सतीप्रथा

प्रस्तावना - इस अध्ययन की गहराई में प्रवेश करने से पूर्व यह जानना जरूरी है कि जिस साहित्य को हम 'प्रतिरोध का स्वर' कह रहे हैं, वह साहित्य किस प्रकार का साहित्य है? और उसमें जो अभव्यक्ति हुई है, वह किसकी अभिव्यक्ति है? लोकसाहित्य में जो 'लोक' विशेषण जुड़ा है, उसपर विचार करने पर दोनों प्रश्नों का उत्तर सहजता से प्राप्त होता है। किसी भी शब्द के साथ जुड़ा विशेषण एक विपरीत या यों कहे कि एक अलग संभावना व्यक्त करता है। जैसे 'लोकसाहित्य' में जुड़ा 'लोक' विशेषण साहित्य की एक अलग परंपरा को चिह्नित करता है अर्थात यह शब्द इस बात का प्रतीक है कि शिष्ट साहित्य की अपेक्षा लोक अर्थात आम जन का भी अपना एक साहित्य है। मगर यहाँ एक प्रश्न ओर उत्पन्न होता है, वह यह है कि जब सम्पूर्ण साहित्य का लक्ष्य ही मनुष्य है, तब लोकसाहित्य और शिष्ट साहित्य जैसा पार्थक्य क्यों? तो इसका उत्तर कुछ इस प्रकार है कि शिष्ट साहित्य में सामान्य जन की अभिव्यक्ति व्यक्ति विशेष के कलम से रूपायित होती है जबकि लोक साहित्य में जनसामान्य स्वयं अपनी अनुभूति को स्वर बद्ध करता है। कदाचित इसी लिए शिष्ट साहित्य की अपेक्षा लोकसाहित्य जनजीवन के अधिक निकट होता है, क्योंकि उसमें शिष्ट साहित्य की अपेक्षा कल्पना के स्थान पर वास्तविकता की प्रधानता अधिक होती है। इस संदर्भ में लोकसाहित्य मर्मज्ञ एवं विश्व-भारती विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर हरिश्चंद्र मिश्र ने उचित कहा है कि "ग्राम्य साहित्य में कल्पना का तान हो या ना हो किन्तु आनन्द का सुर है। ग्रामवासी जिस जीवन का प्रतिदिन भोग करते हैं; ग्रामकवि उसी को भाषादान करता है। कल्पना की संकीर्णता से ही वह अपने प्रतिवेशी को घनिष्ठ सूत्र में बाँध पाता है एवं उसी कारण उसके गाने में कल्पनाप्रिय अकेला कवि नहीं है, बल्कि समस्त जनपद का हृदय कलरव में ध्वनित हो उठता है। "[1] संक्षेप में कहे तो लोकसाहित्य का साध्य भी सामान्य जन है और साधन भी। इस प्रकार लोकसाहित्य में जो लोक शब्द है वह जनसामान्य अर्थात आम जनता का प्रतिनिधित्व करता है । यहाँ लोक अपने रूढ अर्थों (इह लोक, परलोक, त्रिलोक, ग्राम्य, जनपद आदि) की अपेक्षा एक व्यापक अर्थ धारण किए हुए है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कहा जाए तो " 'लोक' शब्द का अर्थ 'जन-पद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई यह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले

* **शोधार्थी, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय** (IGNOU)**, मानविकी विद्यापीठ, हिन्दी विभाग, नई दिल्ली -110067**
shawsanjay16396@gmail.com & 8670373104

लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुयें आवश्यक होती है, उनको उत्पन्न करते हैं।"[2] लोक साहित्य उसी लोकसमाज की सामूहिक मौखिक अभिव्यक्ति है 'जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है।' सामान्य शब्दों में कहा जाए तो लोकसाहित्य वह मौखिक् अभिव्यक्ति है जो परंपरागत रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी संचारित होती रही है और जिसमें लोकजीवन का प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है। यह साहित्य केवल समाज के उज्ज्वल पक्ष को ही प्रस्तुत नहीं करता है, बल्कि उसके 'डार्क साइड' को भी अर्थात सामाजिक कुरीतियों, विषमताओं, विसंगतियों, शोषण, पीड़ा, उत्पीड़न आदि को भी पूरे यथार्थ के साथ प्रस्तुत करता है। चूँकि लोकसाहित्य लोकसमाज का दर्पण है, अतः लोक जीवन में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह भूमिका कई रूपों में दिखाई पड़ती है जैसे - लोकसाहित्य जनसमुदाय की मोदनात्मक इच्छा को संतुष्ट कर उन्हें आनंद प्रदान करता है, इसलिए यह लोक के मनोरंजन का महत्वपूर्ण साधन है। दूसरा, लोकसाहित्य अशिक्षित और अल्पशिक्षित लोगों को जीवनोपयोगी ज्ञान देकर शिक्षा का कार्य करता है। तीसरा; लोकसाहित्य विचारों और सूचनाओं के आदान-प्रदान के माध्यम से जन-संचार और लोक-पत्रकारिता की भूमिका निभाता है। और इसी क्रम में लोकसाहित्य अन्याय और शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाकर लोक-प्रतिवाद का सशक्त माध्यम बनता है। कलकत्ता विश्वविद्यालय के बांग्ला भाषा एवं साहित्य विभाग के पूर्व प्रोफेसर मानस मजूमदार ने इन्हें क्रमशः Amusement, Education, Folk communication – folk journalism तथा Weapon of folk protest कहते हैं।

प्रतिवाद का सामान्य अर्थ विरोध से है। लेकिन 'प्रतिवाद' केवल आपत्ति या विरोध नहीं, बल्कि अन्याय के विरुद्ध उठी हुई सजग आवाज़ है। जब समाज में अत्याचार, दमन और शोषण लंबे समय तक जड़ जमा लेते हैं, तब एक स्वच्छ, न्यायपूर्ण और संतुलित समाज के निर्माण के लिए प्रतिवाद अनिवार्य हो जाता है। यह विरोध लोकजीवन में व्याप्त उन तमाम विषमताओं, कुरीतियों, शोषण, उत्पीड़न आदि के विरुद्ध है जिनसे जनसामान्य त्रस्त है। लोकसाहित्य में यह प्रतिवादी स्वर सुनाई पड़ता है। इस अध्ययन में लोकजीवन में लोकसाहित्य का 'जनप्रतिवाद के हथियार' के रूप में क्या भूमिका रही है? लोकसाहित्य में स्त्री प्रतिवाद का स्वर किस रूप में अभिव्यक्त हुई है ? किसके के विरुद्ध तथा कौन सी सामाजिक परिस्थिति में यह प्रतिवाद की जा रही है? इस शोध के अंतर्गत इन तमाम प्रश्नों का अध्ययन भोजपुरी एवं बांग्ला लोकगीतों को उपजीव्य बनाकर किया जाएगा।

भोजपुरी एवं बांग्ला लोकगीतों में नारी प्रतिवाद का जो स्वर सुनाई पड़ता है वह अचानक बिजली की कौंध की तरह उत्पन्न नहीं हुई है बल्कि युग-युगांतर से पितृसत्तात्मक समाज के चक्की में पिसती स्त्री के विरोध का परिणाम है जो धीरे-धीरे भोजपुरी एवं बांग्ला लोकगीतों में प्रतिरोध के स्वर के रूप में गूँजने लगी। भोजपुरी और बांग्ला लोकसाहित्य में प्रतिवाद का यह स्वर बालविवाह, अनमेल विवाह या वृद्ध विवाह, बहुविवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा, परिवरिक उत्पीड़न, सामाजिक शोषण आदि समकालीन सामाजिक कुरीतियों एवं कुप्रथाओं के विरुद्ध प्रस्फुटित हुई है। भोजपुरी और बांग्ला लोकगीतों में स्त्री प्रतिरोध की अनुगूँज को इस प्रकार देख सकते हैं –

भोजपुरी लोक साहित्य में स्त्रियों का स्थिति बहुत अच्छी नहीं दिख पड़ती है। वह हर जगह दबी, शोषित एवं पीड़ित ही दिखाई पड़ती है। भोजपुरी समाज में एक कहावत प्रचलित है – "पुत्री के जन्म होते समय पृथ्वी तीन बालिस्त (बित्ता) नीचे दब जाती है, मानो वह उसके भार को सह नहीं सकती।"[3] भोजपुरी समाज में प्रचलित इस कहावत से इस समाज में स्त्रियों की स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है। जहाँ पुत्र को 'अंजोरिया' और पुत्री को 'अँधेरिया' के रूप में देखा जाता है, जहाँ पुत्र के जन्म होने पर सोहर गया जाता है जबकि पुत्री के पैदा होने पर कोई गीत नहीं गाया जाता है। भोजपुरी समाज की भांति बांग्ला समाज में भी स्त्री की दशा बहुत अच्छी नहीं दिखती है। इस समाज में भी पुत्र को ही विशेष महत्व दिया जाता है और पुत्री को हेय समझा जाता है। जो इस बांग्ला कहावत में दिख पड़ती है – "পুতের মুখে কড়ি, মেয়ের গলায় দড়ি।"[4] (पुतेर मुखे कड़ी, मेयेर गलाय दड़ी।) अर्थात पुत्र के मुँह में कड़ी (धन), और बेटी के गले में फाँसी। कहते हैं कि लोकोक्तियाँ और कहावतें लोक की उपज होते हैं जो लोक का वास्तविक चेहरा प्रस्तुत करते हैं। इस कहावत में बांग्ला समाज का पितृसत्तात्मक रूप मुखर हो उठा है । इस समाज में भी स्त्री भोजपुरी समाज की भांति ही सामाजिक कुरीतियों की चक्की में पिसती दिखाई पड़ती है।

भोजपुरी और बांग्ला समाज में आज भले ही बालविवाह, वृद्धविवाह, बहुविवाह, सतीप्रथा आदि सामाजिक कुरीतियों और प्रथाओं का प्रचालन न हो, परंतु एक समय ऐसा भी रहा है जब इन समाजों में इन कुप्रथाओं का बोलबाला था। जिनका चित्र भोजपुरी और बांग्ला लोकगीतों में देखने को मिलता है, जहाँ एक ओर इन सामाजिक कुरीतियों और प्रथाओं के कारण नारी के नारकीय जीवन का उल्लेख मिलता है तो वही दूसरी ओर उन गीतों में दबे स्वर में ही सही पर उन तमाम सामाजिक कुरीतियों के प्रति प्रतिवाद का स्वर भी सुनाई पड़ता है। भोजपुरी एवं बांग्ला लोकगीतों में स्त्री की दयनीय स्थिति का एक उदाहरण देखिए , जहाँ दोनों ही समाज में स्त्री बहुविवाह जैसी सामाजिक कुप्रथा का शिकार है –

भोजपुरी लोकगीत :
"नाहि गउरा आन्हर नाहि गउरा लंगर,
नाहि गउरा कोखिया बिहून रे।
बिधि के लिखल गउरा नाहीं मेटे रे।
भावी कइल दूसर बियाह रे।"[5]

বাংলা लोकगीत :
"বিষ্টি পড়ে টাপুর টুপুর,নদেয় এল বান,
শিবঠাকুরের বিয়ে হল তিন কন্যে দান।
এক কন্যে রাঁধেন বাড়েন, এক কন্যে খান,
এক কন্যে না খেয়ে বাপের বাড়ি যান।"[6]

बांग्ला लोकगीत का हिंदी लिप्यंतरण :
बिष्टि पड़े टापुर टुपुर, नदीए एलो बान,
शिव ठाकुरेर बिये होलो तीन कन्ये दान।
एक कन्ये रांधेन बारेन, एक कन्ये खान,
एक कन्ये ना खेये बापेर बाड़ी जान॥

उपर्युक्त भोजपुरी लोकगीत में लोककवि ने मिथकीय चरित्र शिव को प्रतीक बनाकर भोजपुरी समाज में प्रचलित बहुविवाह की प्रथा को चिह्नित किया है। जिसका भावार्थ इस प्रकार है - शिवजी भी परदेस में जाकर दूसरा विवाह करके लौटते हैं। तब पार्वती उनसे प्रश्न करती हैं कि मुझमें क्या दोष था जो आपने दूसरा विवाह किया तब शिव उत्तर देते हैं कि गौरा (स्त्री) न तो तुम अंधी हो, न तो तुम लंगड़ी हो और न ही तुम बाँझ (संतानहीन) हो। तुम निर्दोष हो परन्तु मेरे भाग्य में ही दूसरा विवाह लिखा था। पति का दूसरा विवाह स्त्री के लिए कितना पीड़ादायी होता है उसका अंदाजा भोजपुरी लोकगीतों में प्रयुक्त 'सवति' शब्द से लगाया जा सकता है। किसी भी समाज में विवाहित स्त्री के लिए सौत (सपत्नी) एक बड़ा अभिशाप है, जिसे झेलने से बेहतर वो मारना पसंद करती है। भोजपुरी में एक कहावत है कि – "चुनो के सौत ना भावेले।"[7] अर्थात आटे की निर्जीव सौत की प्रकृति भी स्त्री को नहीं भाती है। भोजपुरी में 'सौत' के लिए 'सवति' शब्द प्रयोग हुआ है। भोजपुरी में अनेक लोकगीत इस सौत प्रसंग से भरे पड़े हैं जो बहुविवाह की पीड़ा को प्रस्तुत करती हैं। उदाहरणार्थ इस लोकगीत को देखिए जिसमें एक स्त्री के लिए सपत्नी (सौत) का द्वेष इतना असह्य हो गया है कि वह आत्महत्या करने के लिए अपनी सास से छुरी और कटार मांगती है –

"जब हम रहितीं जी बारी लिड़िकिया, ए राजा, ए राजा ए राजा हो।
सँइया माँगे गवनवा ॥१॥
बरहो बरिस पर हरि मोर अइलें, ले अइलें, ते अइले, ले अइलें हो।
हमरे पर सवतिया ले अइले हो ॥२॥
सवतीहि लेइ सामि सुतले अँगनवा, ना माने, ना माने, ना माने हो।
गुलजारी नयनवा ना माने हो ॥३॥
देहू ना सासू हो छुड़िया कतरियां', हति घलवों, हति घलबों,
हति घलबों हो।
सासु आपन पारानव, हति घलवों हो ॥४॥"[8]

भोजपुरी की मौखिक परंपरा में स्त्री की इस दीन-हीन दशा का विश्लेषण करते हुए धनंजय सिंह लिखते हैं कि – "मौखिक परम्परा में यह बड़ी दिलचस्प बात दिखती है कि पुरुष कितनी भी स्त्रियों से सम्बन्ध बना सकता है परन्तु अनबोलता स्त्री के लिए अन्य पुरुष से सम्बन्ध बनाना तो दूर की बात है। अपनी पवित्रता का निर्भीक होकर सबूत देना भी उसके लिए चुनौतीपूर्ण काम है। लोकसाहित्य साक्षी है कि इधर पत्नी अपने आत्म सम्मान को पति की इज्जत समझकर अपने सतीत्व की रक्षा करती रही, उधर प्रवास में पति दूसरी स्त्री भी रखता है और घर लौटकर पत्नी के सत की परीक्षा भी लेता है।"[9]

ऊपर बांग्ला के जिस लोकगीत का उल्लेख किया गया है वह बंगाल में प्रचलित एक शिशुगीत या बालगीत है जिसमें बहुविवाह (Polygamy) की सामाजिक वास्तविकता और उसके परिणामों को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। इस गीत में भी लोककवि ने मिथकीय चरित्र शिव को लोकप्रतीक में ढालकर शिव को उच्च वर्ग का तथा अधिकार संपन्न व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत कर उस प्रथा की ओर संकेत किया है, जहाँ एक पुरुष कई स्त्रियों से विवाह करता था। इस गीत का भावार्थ इस प्रकार है - टप-टप वर्षा हो रही है, नदी में बाढ़ आ गई है। इसी समय शिव ठाकुर का विवाह होता है और उन्हें तीन कन्याएँ दान में दी जाती हैं। जिनमें एक कन्या घर का काम करती है, खाना बनाती है और सब संभालती है। दूसरी, कन्या आराम से भोजन करती है, यानी उसे किसी प्रकार की कमी नहीं है। लेकिन तीसरी कन्या ऐसी है जिसे भोजन भी नहीं मिलता और वह दुखी होकर अपने मायके (पिता के घर) लौट जाती है। इस गीत की अंतिम पंक्ति बंगला समाज में स्त्री की उस पीड़ा को प्रस्तुत करती है, जो उसे पुरुष समाज ने बहुविवाह के नाम पर दिया है। इस पीड़ा की चरम अवस्था को हम बंगाल में प्रचलित इस कहावत (प्रवाद) में देख सकते हैं – "একা ছিলাম ঘরের মাথার ঠাকুর। সতীন এল

আঁস্তাকুড়ের হলাম কুকুর।"[10] अर्थात जब मैं अकेली थी, तब घर में मैं सबसे आदरणीय और प्रधान थी। जैसे ही सौतन (पति की दूसरी पत्नी) आई, मैं कूड़े के ढेर की कुतिया बन गई। उपर्युक्त बांग्ला लोकगीत में टप-टप वर्षा का होना या फिर नदी में बाढ़ आना इन प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से नारी ने समाज प्रदत्त इस पीड़ा के विरुद्ध अपना आक्रोश व्यक्त किया है। जिसमें भोजपुरी लोकगीत की अपेक्षा स्त्री प्रतिवाद का स्वर ज्यादा प्रखर दिखाई पड़ता है।

इन दोनों क्षेत्रों के लोकगीतों में स्त्री बहुविवाह का दंश झेलती दिखाई पड़ती है, परंतु इन दोनों ही समाजों में इस सामाजिक कुप्रथा के जन्म लेने की पृष्ठभूमि अलग अलग है। भोजपुरी समाज में बहुविवाह के चलन के पीछे कई कारण दिखाई पड़ते हैं – जैसे पत्नी के मरने के बाद पुरुष का दूसरा विवाह करना, पहली पत्नी से संतानोत्पत्ति न होने पर पुत्र की लालसा से पुरुष का दूसरा विवाह करना, पुरुष का काम पाश में फँस कर दो-चार विवाह करना आदि। आज भी एक-दो घटनाएं ऐसी भोजपुरी समाज में देखने को मिलती है। एक गीत में तो स्त्री खुद यह कहती है कि मेरे लिए आप अपने भाई की हत्या मत करो, भाई के मरने पर आप अकेले पड़ जाएंगे परंतु स्त्री के मरने पर आप दूसरा विवाह कर सकते है – "भइया मरले जयसिंह अकसर होइब, धनिया मरले दोसर धनिया नूरे जी।"[11] भोजपुरी समाज की अपेक्षा बांग्ला समाज में बहुविवाह की प्रथा काफी प्रचलित और पुरानी जान पड़ती है। जिसकी पृष्ठभूमि भोजपुरी समाज से भिन्न दिखाई पड़ती है। बंगाल में यह प्रथा कुलीन प्रथा की कोख से जन्मी थी। जिसका प्रचलन बंगाल में 12वी शताब्दी में बल्लाल सेन के समय में हुआ। इस संबंध में प्रोफेसर मानस मजूमदार लिखते हैं कि – "কুলমর্যাদা বৃদ্ধির উদ্দেশ্যে কুলীন-অকুলীন ব্রাহ্মণেরা কুলীন পাত্রের সঙ্গে কন্যার বিয়ে দিতে সচেষ্ট ছিলেন। কুলীন পাত্রের বয়স, আর্থিক সচ্ছলতা, বিদ্যাশিক্ষা, এসবের কোনও গুরুত্ব ছিল না। কৌলীন্যই হত প্রধান বিবেচ্য। আর তাই কুলীন পাত্রদের আর্থিক চাহিদাও ছিল বেশি। বহু কুলীন ব্রাহ্মণই এ সুযোগে বিয়েটাকেই জীবিকা নির্বাহের উপায় হিসেবে গ্রহণ করেছিলেন। এর ফলে চালু হয় বহু বিয়ের প্রথা, অর্থাৎ Polygamy। এক একজন কুলীন ব্রাহ্মণ অনেকগুলি বিয়ে করতেন।"[12] (कुल-प्रतिष्ठा बढ़ाने के उद्देश्य से कुलीन और अकुलीन ब्राह्मण, दोनों ही अपनी बेटियों का विवाह कुलीन वर से करने के लिए उत्सुक रहते थे। उस समय वर की आयु, आर्थिक स्थिति या शिक्षा का कोई विशेष महत्व नहीं था; कुलीनता ही मुख्य आधार होती थी। इसी कारण कुलीन वरों की आर्थिक मांग भी अधिक होती थी। बहुत से कुलीन ब्राह्मणों ने इस स्थिति का लाभ उठाकर विवाह को ही जीविका का साधन बना लिया। परिणामस्वरूप बहुविवाह (Polygamy) की प्रथा शुरू हुई। एक-एक कुलीन ब्राह्मण कई-कई विवाह करते थे।) उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल के महान समाज सुधारक, शिक्षाविद् और लेखक ईश्वरचंद विद्यासागर ने समाज की इस कुप्रथा के विरुद्ध आंदोलन चलाया और उसकी की जांच-पड़ताल कर यह पाया कि – 'कई कुलीन ब्राह्मण सौ से भी अधिक कन्याओं के पति थे। लेकिन वे अधिकांश पत्नियों का भरण-पोषण नहीं करते थे और उन्हें उचित सम्मान भी नहीं देते थे।'[13] जिसकी झलक ऊपर उल्लेखित बांग्ला शिशुगीत (बालगीत) में दिखाई पड़ता है।

इसी तरह बांग्ला लोकगीतों में वृद्धविवाह का वर्णन भी भारी संख्या में मिलता है। इस समाज में प्रचलित वृद्ध विवाह की प्रथा का गहराई से अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि यह सामाजिक कुप्रथा भी कुलीन प्रथा की ही देंन है। अपनी कुलीनता को बनाए रखने के लिए कन्या के अभिभावक वृद्ध वर से अपनी बालिका कन्या का विवाह करने में भी संकोच नहीं करते थे। कुलीनता को बनाए रखने के लिए जन्मी यह प्रथा कालांतर में गरीबी और दहेज प्रथा के कारण अभिभावकों के लिए बाध्यता बन गई थी। भोजपुरी समाज में भी वृद्धविवाह की प्रथा रही है परंतु बांग्ला समाज की भाँति इतनी उग्र नहीं थी। कदाचित यही कारण है कि भोजपुरी लोकगीतों में भी वृद्धविवाह का वर्णन कहीं-कहीं देखने को मिलता है। बांग्ला समाज में जहाँ कुलीनता इस प्रथा की जनक थी वही भोजपुरी समाज में गरीबी, तिलक-दहेज की प्रथा के कारण या धन के लालच में अपनी बेटियों का विवाह वृद्ध पुरुषों से कर देते थे। दोनों ही समाजों में ऐसे अनमेल विवाह के कारण कन्याओं का पूरा जीवन दुख और पीड़ा में गुजरता था। ये बलिकाएँ जैसे-जैसे वे बड़ी होती थीं, उनके मन में क्रोध और असंतोष बढ़ता जाता था। जो लोकगीतों में प्रस्फुटित हुआ, कारण उस समय काल में सीधे-सीधे विरोध करना पाना स्त्री समाज के लिए असंभव था। जिसका एक उदाहरण यहाँ देख सकते हैं –

भोजपुरी लोकगीत :
"पइसा के लालच पडि के बुढऊ से सादी रे।
सादी ना कईले ई त मोर बरबादी रे।
कोठा ऊपर कोठरी बुढऊ के जोरू रे।
जात सरमवा लागे राम बुढऊ के जोरू रे।
झीनी चदरिया ओढि के बगिया में गइली रे।
मलिया हरामी ठट्ठा मरलसि, बुढऊ के जोरू
रे।"[14]

বাংলা লোকগীত :
"তালগাছ কাটিম্ বোসের বাটিম্
গৌরী হেন ঝি,
তোর কপালে বুড়ো বর, আমি করব কী।
টঙ্কা ভেঙে শঙ্খা দিলাম
কানে মদনকড়ি,
বিয়ের বেলা দেখে এলাম
বুড়ো চাপদাড়ি।
চোখ খাও গো মা বাপ
চোখ খাও গো খুড়ো,
এমন বরকে বিয়ে দিলে
তামাক-খেগো বুড়ো। "[15]

हिंदी लिप्यंतरण:
तालगाछ काटम् बोसेर बाटम् ,
गौरी हेन झी,
तोर कपाले बुढ़ो बर, आमी
करब की।
टंका भेंगे शंखा दिलाम,
काने मदनकड़ी,
बियेर बेला देखे एलाम,
बुढ़ो चापदाढ़ी।
चोख खाओ गो मा-बाप,
चोख खाओ गो खुड़ो,
एमन बरके बिये दिले,
तामाक-खेगो बुढ़ो।

उपर्युक्त भोजपुरी लोकगीत का भावार्थ कुछ इस प्रकार है जिसमें एक स्त्री अपने जीवन के संबंध में पितृसत्तात्मक नियंत्रण का विरोध करते हुए अपने पिता को दोष देते हुए कहती है कि - पैसे के लालच में उसका विवाह एक वृद्ध पुरुष से कर दिया गया, यह उसका विवाह नहीं किया गया, बल्कि उसकी बलि दे दी गई है। लोग उसे 'बूढ़े की स्त्री' कहकर उपहास उड़ाते हैं। समाज में उसे बहुत लज्जा का अनुभव होता है। उसका जीवन दुख और शर्म से भर गया है। यह पूरा गीत एक तरह से भोजपुरी समाज की स्त्री की आत्मकथा है, जिसमें वह अपनी पीड़ा व्यक्त करती है, उसके साथ हुए सामाजिक अन्याय को उजागर करती है और अपने हालात के प्रति असहमति दर्ज करती है। यह असहमति उस हालत के प्रति असहमति है जहाँ स्त्री को केवल वस्तु की तरह देखा गया और उसका सौदा लगाया गया है।

ठीक यही स्थिति बांग्ला लोकगीत में दिखाई पड़ती है। बांग्ला लोकगीतों में नारी प्रतिवाद का स्वर इतना मुखर रहा है कि बांग्ला के 'शिशुगीत' (जिन्हें बांग्ला में 'छेलेभुलानो छड़ा' कहा जाता है।) भी उनके प्रभाव से बच नहीं सके हैं। उपर्युक्त बांग्ला शिशुगीत में भी स्त्री प्रतिवाद की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। उपर्युक्त गीत का भावार्थ कुछ इस प्रकार है - जिसमें एक कन्या जो वृद्ध विवाह की शिकार है, वह इस कुप्रथा के खिलाफ तीखा प्रतिवाद प्रस्तुत करती हुई अपने अभिभावकों से कहती है कि उसका विवाह ऐसे बूढ़े पुरुष से तय कर दिया गया है जिसकी उम्र, रूप और आदतें (जैसे तंबाकू-हुक्का) उसे बिल्कुल भी स्वीकार्य नहीं हैं। वह अपने माता-पिता और अभिभावकों से प्रश्न करती है कि उन्होंने ऐसे व्यक्ति से उसका विवाह क्यों तय किया, जिससे उसका जीवन दुख और पीड़ाओं से भर उठा है। वह व्यंग्य और आक्रोश भरे शब्दों में अपने बूढ़े पति का चित्रण करती है और उसके साथ जीवन जीने को अस्वीकार करती है। अंततः यह गीत स्त्री की उस चेतना की अभिव्यक्ति है जिसमें वह अपने ऊपर थोपे गए विवाह और सामाजिक निर्णयों के खिलाफ आवाज उठाती है। नारी के इस विरोध का बांग्ला समाज पर सकारात्मक प्रभाव परिलक्षित होता है। जिसका एक उदाहरण इस बांग्ला लोकगीत में देख सकते हैं जिसमें प्रतिवादी नारी की माँ अपनी पुत्री का विवाह किसी वृद्ध व्यक्ति से नहीं करना चाहती, वह भी ऐसे वृद्ध व्यक्ति से जो कभी भी काल कवलित हो सकता है –

বাংলা লোকগীত :
"বুড়ইয়া জামাই পুড়ইয়া খাইয়াম লবন মাখাইয়া,
জোয়ান জামাই ঘরে আনবাম তেল সিন্দুর দিয়া।
কন্যারে ডাক্য না আর আমগাছের ডালে,
বুড়ইয়া জামাই দেখলে আমার ইন্দ্রের আগুন জ্বলো"[16]

हिंदी लिप्यंतरण:
बुड़इया जामाइ पुड़इया खाइयाम लबण माखाइया,
जोयान जामाइ घरे आनबाम तेल सिन्दुर दिया।
कन्यारे डाक्य ना आर आमगाछेर डाले,
बुड़इया जामाइ देखले आमार इद्रेर आगुन ज्वलो।

इन पंक्तियों में एक माँ की तीव्र विरोध और पीड़ा व्यक्त हुई है। वह कहती है कि बूढ़े दामाद को तो जला कर नमक लगाकर खा जाऊँ, लेकिन घर में जवान दामाद को ही तेल-सिंदूर देकर लाऊँगी। यहाँ तेल-सिंदूर देकर लाने का अर्थ है ससम्मान लाना। वह कहती है कि कन्या को अब मत बुलाना आम के पेड़ की डाल पर। क्योंकि उस बूढ़े पति को देखते ही उसके भीतर क्रोध और विद्रोह की आग भड़क उठती है।

ध्यान से देखा जाए तो इस गीत में स्त्रियों के शोषण की एक और घृणित प्रथा की छवि दिखाई पड़ती है - वह है सती प्रथा। प्राचीन समय में स्त्रियाँ अपने पति के अगाध प्रेम के वशीभूत होकर, उसके मरने पर स्वयं भी उसके शव के साथ सती हो जाती थीं। इसिहास में सैकड़ों रजपूती स्त्रियों का धधकती हुई ज्वाला में 'जौहर' हो जाना इसका सबसे सशक्त उदाहरण है। परंतु कालांतर में

पितृसत्तात्मक समाज ने इसे स्त्रियों के लिए अनिवार्य कर दिया था और जो आत्मदाह प्रेम के अभिभूत होकर दी जा रही थी वह अब सामाजिक बाध्यता बन गई। जिसमें स्त्री के न चाहते हुए भी समाज उसे मृत पति की चिता के साथ जिंदा जला देता था। उपर्युक्त गीत की यह पंक्ति - 'কন্যারে ডাক্য না আর আমগাছের ডালে' (अब कन्या (बेटी) को आम के पेड़ की डाल पर मत बुलाओ।) उन तमाम स्त्रियों की चीख से उपजी है, जिसे समाज ने अनसुना कर दिया था। बांग्ला लोकसाहित्य में इस तरह की पंक्ति पुत्री (कन्या) के दुख या सामाजिक कुरीति (जैसे सती या विधवा-जीवन) की ओर संकेत करती है। उदाहरणार्थ बांग्ला का यह कहावत देखिए – "মেয়ে যেন আমের ডাল ধরেছে"[17](लड़की जैसे आम की डाली पकड़े हुए है।) जिस समय सती प्रथा का बंगाल में चलन था उस समय बंगाल में विधवा के हाथ में आम की टहनी या डाली का होना उसके सती होने की ओर संकेत था। इस संदर्भ में प्रोफेसर मानस मजूमदार लिखते हैं कि – "সতীদাহ প্রথা যে সমাজে প্রচলিত ছিল সে সমাজে সদ্যবিধবার হাতে থাকত আমের একটি শাখা বা ডাল। অর্থাৎ, সে অনুমৃতা হতে চায়। শোকার্তা সদ্যবিধবা এভাবেই তার অভিপ্রায় প্রকাশ করত।"[18] (जिस समाज में सतीदाह प्रथा प्रचलित थी, वहाँ नव विधवा के हाथ में आम की एक शाखा या डाली रहती थी। अर्थात, वह 'अनुमृता' (सती होने) की इच्छा व्यक्त करती थी। शोकग्रस्त नव विधवा इसी प्रकार अपना अभिप्राय प्रकट करती थी।) उपर्युक्त बांग्ला गीत में देखा जाए तो सती प्रथा के खिलाफ प्रखर आवाज प्रतिध्वनित हुई है। इस गीत में युवती की माँ यह नहीं चाहती है कि उसकी कन्या का विवाह किसी वृद्ध पुरुष से हो, जिससे उसे अल्पावस्था में ही वैधव्य और सतीदाह की आग में जलना पड़े। इसी लिए वह कहती है कि – 'বুড়ইয়া জামাই দেখলে আমার ইদ্রের আগুন জ্বলে।' अर्थात बूढ़ा जमाई (दमाद या वृद्ध पति) को देखते ही मेरे भीतर क्रोध की आग भड़क उठती है। इस प्रथा के प्रति विरोध का स्वर शिष्ट समाज तक भी पहुँचा, जिसका परिणाम 19वीं शताब्दी में राजा राममोहन राय के द्वारा सती प्रथा के विरोध में प्रबल आंदोलन और उनके प्रयासों तथा लॉर्ड बेंटिंक के समर्थन से 1829 में इस सामाजिक कुप्रथा पर कानूनी रूप से प्रतिबंध लगा दिया गया। बांग्ला के इन छड़ाओं (शिशुगीतों) के संदर्भ में कविगुरु रबीन्द्रनाथ ठाकुर ने उचित ही कहा है कि - "...এই ছড়ার মধ্যে পুরাতন বিস্মৃত ইতিহাসের অতিক্ষুদ্র এক ভগ্ন অংশ থাকিয়া গিয়াছে।"[19] (इन छड़ाओं (शिशुगीतों) के भीतर प्राचीन, भूले-बिसरे इतिहास का अत्यंत छोटा, टूटा हुआ अंश छिपा रह गया है।) इसमें कोई संदेह नहीं कि ये गीत अपने समय और समाज का इतिहास ही नहीं प्रस्तुत करते बल्कि उस दौर में प्रचलित सामाजिक कुरीतियों और कुप्रथाओं के विरुद्ध नारी के प्रतिवादी स्वर को भी इतिहास में दर्ज करते हैं।

बांग्ला लोकगीतों की भाँति भोजपुरी लोकगीतों में भी सती प्रथा का उल्लेख मिलता है, किंतु दोनों परंपराओं में इसकी प्रस्तुति का स्वरूप भिन्न है। बांग्ला लोकगीतों में जहाँ सती प्रथा के कारण स्त्री को शोषित और पीड़ित रूप में दिखाया गया है तथा इस कुप्रथा के विरुद्ध स्पष्ट विरोधी स्वर भी उभरकर सामने आते हैं, वहीं भोजपुरी लोकगीतों में सती होने वाली नारी को एक भव्य, दिव्य और आदर्श रूप में चित्रित किया गया है। जिसका एक उदाहरण देख सकते हैं –

"मचियहिं बइठलि अमा तू मइया हो हमारी। लहुरा पटोरवा देहु हमरा के दान।
पासावा खेलत चुहु भइया हो हमार। चनन चइलिया देहु हमरा के दान।
एक त पातरि बेटि दूसर सुकुवारि। कइसे कइसे सहबू बेटी अगिनि के आंचि।
तोहरा लेखे अम्मा हो अगिनि के आँचि।हमरा लेखे आँचिया बा सितली बतास।"[20]

यह भोजपुरी लोकगीत सती प्रथा के संदर्भ में स्त्री-जीवन की करुण विडम्बना, सामाजिक दबाव का अत्यंत संवेदनशील चित्र प्रस्तुत करता है। इस गीत में स्त्री, जो अपने दांपत्य जीवन के सौभाग्य-चिह्नों से सुसज्जित हो रही है, उसी क्षण पति की मृत्यु का समाचार पाकर बिना किसी विलम्ब के सती होने का निश्चय कर लेती है, उसका यह निर्णय उसकी स्वतंत्र इच्छा नहीं, बल्कि उस समय के सामाजिक-सांस्कृतिक दबाव और 'पतिव्रता आदर्श' की गहरी जड़ें हैं। माँ से रेशमी वस्त्र, भाई से चन्दन की लकड़ी और भाभी से सिन्दूर माँगना केवल वस्तुओं की याचना नहीं, बल्कि जीवन के अंतिम संस्कार हेतु स्वयं को तैयार करने की एक सांकेतिक प्रक्रिया है, जिसमें श्रृंगार और मृत्यु का अद्भुत, किन्तु पीड़ादायक संगम दिखाई देता है। दूसरी ओर, माँ का हृदय ममता और करुणा से व्याकुल होकर अपनी सुकुमार बेटी को अग्नि की भयानकता से बचाना चाहता है, जो स्वाभाविक मानवीय संवेदना का प्रतीक है। किंतु स्त्री का यह कहना कि उसके लिए अग्नि की ज्वाला भी शीतल वायु के समान है, उस मानसिक स्थिति को उजागर करता है जिसमें स्त्री अपने भीतर के भय, पीड़ा और जीवन-प्रेम को दबाकर सामाजिक मान्यताओं को ही अपना सत्य मान लेती है। इस प्रकार, यह गीत केवल समर्पण और पतिव्रता धर्म का महिमामंडन नहीं करता, बल्कि उसके भीतर छिपी स्त्री की असहायता, दबी हुई वेदना को भी गहराई से अभिव्यक्त करता है।

उपर्युक्त दोनों ही लोकगीतों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि बांग्ला लोकगीतों में सामाजिक चेतना और प्रतिवाद का तत्व अधिक प्रबल है, जो स्त्री की पीड़ा और अन्याय के प्रति संवेदनशील दृष्टि विकसित करता है। इसके विपरीत, भोजपुरी लोकगीतों में परंपरागत मूल्यों और आदर्शों का महिमामंडन प्रमुख है, जहाँ सती स्त्री को त्याग, निष्ठा और पवित्रता की प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार, दोनों लोकपरंपराएँ एक ही प्रथा को अलग-अलग सामाजिक दृष्टिकोणों से प्रस्तुत करती हैं - एक ओर प्रतिरोध और जागरूकता, तो दूसरी ओर आदर्शीकरण और परंपरानिष्ठा। इन गीतों में केवल एक नारी की वेदना और पीड़ा की अभिव्यक्ति नहीं हुई है, बल्कि यह अभिव्यक्ति उन असंख्य नारियों की है जो परंपरा से पितृसत्तात्मक समाज के शोषण का शिकार होती रहीं है। इन अभिव्यक्तियों ने न केवल नारी की वेदना को समाज के सामने रखा, बल्कि समाज को उनके प्रति सचेत, संवेदनशील एवं जागरूक किया।

निष्कर्ष - इस तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि लोकगीत केवल मनोरंजन के साधन नहीं, बल्कि स्त्री-जीवन के अनुभवों, संघर्षों और प्रतिरोध की सशक्त अभिव्यक्ति के माध्यम भी हैं। भोजपुरी लोकगीतों में नारी का प्रतिवाद अपेक्षाकृत अधिक परोक्ष, मार्मिक और सहनशीलता के आवरण में प्रकट होता है, जहाँ वह सामाजिक मर्यादाओं के भीतर रहकर अपनी पीड़ा, असंतोष और विरोध को व्यक्त करती है। इसके विपरीत, बांग्ला लोकगीतों में नारी-स्वर अधिक स्पष्ट, मुखर और प्रत्यक्ष रूप में उभरता है, जहाँ स्त्री सामाजिक कुप्रथाओं, पारिवारिक अत्याचारों के विरुद्ध खुलकर आवाज़ उठाती है। दोनों ही परंपराओं में बाल-विवाह, बहुविवाह, वृद्ध-विवाह, तथा सती प्रथा जैसी कुप्रथाओं के संदर्भ में स्त्री की पीड़ा और उसके अंतर्निहित प्रतिरोध के स्वर मिलते हैं, किन्तु उनकी अभिव्यक्ति के रूप और तीव्रता में भिन्नता दिखाई देती है। यह भी स्पष्ट होता है कि लोकगीतों के माध्यम से स्त्रियाँ न केवल अपने दुख-दर्द को साझा करती हैं, बल्कि सामाजिक चेतना को जागृत करने और परिवर्तन की दिशा में संकेत देने का कार्य भी करती हैं।

अंततः कहा जा सकता है कि भोजपुरी और बांग्ला लोकगीतों में नारी प्रतिवाद भिन्न-भिन्न शैली और स्वरूप में उपस्थित होते हुए भी स्त्री-अस्मिता, आत्मसम्मान और सामाजिक न्याय की आकांक्षा का सशक्त दस्तावेज़ हैं, जो लोकसंस्कृति के भीतर छिपी परिवर्तनकारी चेतना को उजागर करते हैं।

संदर्भ सूची :

1. मिश्र, हरिश्चंद्र, लोक साहित्य संदर्भ, आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद, भोपाल, प्रथम संस्कार : 2020, पृ.39.
2. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, लोक-साहित्य की भूमिका, द्वितीय लोकभारती संस्करण : 2023, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज – 211001, पृ. 11
3. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, हिन्दी प्रचारक् पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1960, पृ. 236.
4. আল্দীন, শামস্, লোকসাহিত্য নারী, লোকসংস্কৃতি ও আদিবাসী সংস্কৃতি কেন্দ্র, কলকতা, প্রথম প্রকাশ : 2021, পৃ. 21.
   (आल्दीन, शामस् , *लोकसाहित्य में नारी*, लोकसंस्कृति एवं आदिवासी संस्कृति केंद्र, कोलकाता, प्रथम प्रकाशन : 2021, पृ. 21.)
5. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, हिन्दी प्रचारक् पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1960, पृ. 286.
6. গোস্বামী, শ্রীনিত্যানন্দবিনোদ, ছেলেভুলানো ছড়া, বিশ্বভারতী গ্রন্থালয়, কলিকাতা, পুনর্মুদ্রণ : ১৩৫৮, পৃ. 9.
   (गोस्वामी, श्रीनित्यानंदविनोद, *छेलेभुलानो छड़ा (शिशुगीत)*, विश्वभारती ग्रंथालय, कोलकाता, पुनर्मुद्रण : 1358, पृ. 9.)
7. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, हिन्दी प्रचारक् पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1960, पृ.296.
8. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, भोजपुरी लोकगीत भाग – 1, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग,द्वितीय संस्करण : 1953, पृ. 388.
9. सिंह, धनंजय, पुरबियों का लोकवृत वाया देस-परदेस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण : 2020, पृ. 197.
10. আল্দীন, শামস্, লোকসাহিত্য নারী, লোকসংস্কৃতি ও আদিবাসী সংস্কৃতি কেন্দ্র, কলকতা, প্রথম প্রকাশ : 2021, পৃ.25.
    (आल्दीन, शामस् , *लोकसाहित्य में नारी*, लोकसंस्कृति एवं आदिवासी संस्कृति केंद्र, कोलकाता, प्रथम प्रकाशन : 2021, पृ. 21.)
11. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, हिन्दी प्रचारक् पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1960, पृ. 286
12. মজুমদার, মানস, লোকঐতিহ্য-চর্চা, প্রথম প্রকাশ – 2010, দে জ পাবলিশং, কোলকাতা – 700073, পৃ.14.
    (मजूमदार, मानस, *लोक-ऐतिहासिक अध्ययन*, प्रथम प्रकाशन : 2010, दे'ज पब्लिशिंग, कोलकाता – 700073, पृ. 14.)
13. वही, पृ. 14.
14. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, हिन्दी प्रचारक् पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1960, पृ. 283.
15. গোস্বামী, শ্রীনিত্যানন্দবিনোদ, ছেলেভুলানো ছড়া, বিশ্বভারতী গ্রন্থালয়, কলিকাতা, পুনর্মুদ্রণ : ১৩৫৮, পৃ.25.
    (गोस्वामी, श्रीनित्यानंदविनोद, *छेलेभुलानो छड़ा (शिशुगीत)*, विश्वभारती ग्रंथालय, कोलकाता, पुनर्मुद्रण : 1358, पृ. 25.)

16. মজুমদার, মানস, লোকঐতিহ্য-চর্চা, প্রথম প্রকাশ – 2010, দে জ পাবলিশং, কোলকাতা – 700073, পৃ. 15.
(मजूमदार, मानस, *लोक-ऐतिहासिक अध्ययन,* प्रथम प्रकाशन : 2010, दे'ज पब्लिशिंग, कोलकाता – 700073, पृ. 14.)
17. वही, पृ. 15.
18. वही, पृ. 15.
19. গোস্বামী, শ্রীনিত্যানন্দবিনোদ, ছেলেভুলানো ছড়া, বিশ্বভারতী গ্রন্থালয়, কলিকাতা, পুনর্মুদ্রণ : ১৩৫৮, পৃ. 2.
(गोस्वामी, श्रीनित्यानंदविनोद, *छेलेभुलानो छड़ा (शिशुगीत),* विश्वभारती ग्रंथालय, कोलकाता, पुनर्मुद्रण : 1358, पृ. 2.)
20. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, हिन्दी प्रचारक् पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण : 1960, पृ.252.

वृद्धजनों के समायोजन में परिवार और समाज की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. वन्दना*

सारांश

आज समाज में, जिस तीव्रता से औद्योगीकरण, शहरीकरण, पलायन और पारंपरिक पारिवारिक ढांचों में बदलाव हो रहा है उस कारण बुजुर्गों के बीच सामंजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया एक बहुत ही महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दा बन गया है। भारत में, जहाँ परिवार ऐतिहासिक रूप से सामाजिक सुरक्षा और भावनात्मक सहारे का मुख्य साधन रहा है, वहाँ एकल परिवारों का संयुक्त परिवारों से पृथक होना, बुजुर्गों के लिए बदलाव सामाजिक अकेलेपन, आर्थिक निर्भरता, बिगड़ती स्वास्थ्य और सामाजिक गतिविधियों में कम भागीदारी जैसी नई चुनौतियाँ उत्पन्न कर दी हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से यह अध्ययन, बुजुर्गों के सामाजिक, भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक सामंजस्य को सरल बनाने में परिवार और समाज की अहम भूमिका की जाँच करता है। इससे यह पता लगता है कि कैसे परिवार के सदस्य देखभाल, प्यार, इज्जत और आर्थिक मदद देते हैं, जिसका बुजुर्गों के कल्याण और जीवन संतुष्टि पर गहरा असर पड़ता है। साथ ही, यह अध्ययन बुजुर्गों की गरिमा, सुरक्षा और सामाजिक जीवन में उनकी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने में सामाजिक संस्थाओं, सरकारी कल्याणकारी योजनाओं, सामुदायिक संगठनों, स्वास्थ्य सेवाओं और सामाजिक सहायता नेटवर्क के महत्व पर भी जोर देता है। यह शोध इस बात पर बल देता है कि बुढ़ापे में सफल समायोजन केवल व्यक्ति की अपनी मुश्किलों से निपटने की क्षमता पर ही निर्भर नहीं करता, बल्कि इसमें परिवार, समुदाय और सरकार की सामूहिक साझेदारी भी सम्मिलित होती है। इसलिए, बुजुर्गों के अनुकूल सामाजिक नीतियाँ बनाना, अलग-अलग पीढ़ियों के बीच के रिश्तों को आपस में बांधना, सामाजिक जागरूकता उत्पन्न करना और सामाजिक सुरक्षा के उपायों का विस्तार करना, आधुनिक समाज में बुजुर्गों के जीवन की गुणवत्ता और सामाजिक एकीकरण को बेहतर बनाने की दिशा में जरूरी कदम है ।

प्रस्तावना

मानव जीवन का आखिरी और दूस्साध्य चरण वृद्धावस्था होता है, जिसके दौरान व्यक्ति विभिन्न शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आर्थिक बदलावों का अनुभव करता है। आधुनिक समाज में, चिकित्सा सुविधाओं में प्रगति, पोषण मानकों में सुधार और जीवन प्रत्याशा में वृद्धि के कारण बुजुर्गों की संख्या में निरन्तर बढ़ोतरी हो रही है। भारत में भी, जनसंख्या संरचना में बदलाव के परिणामस्वरूप बुजुर्ग आबादी के अनुपात में तीव्र गति से वृद्धि हुई है, जिससे उनका समायोजन एक प्रमुख सामाजिक मुद्दा बन चुका है। समायोजन से तात्पर्य किसी व्यक्ति की अपने पर्यावरण, सामाजिक संबंधों और परिवर्तित परिस्थितियों के साथ समरूपता बनाए रखने की क्षमता से है। वृद्धावस्था में, यह प्रक्रिया अधिक चुनौतीपूर्ण हो जाती है क्योंकि उनको शारीरिक कमजोरी, आर्थिक निर्भरता, सामाजिक अलगाव और भावनात्मक सुरक्षा की कमी जैसी गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ जाता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, बुजुर्गों के समायोजन में परिवार और समाज, दोनों ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि परिवार और समाज एक सहायक वातावरण प्रदान करते हैं, तो एक बुजुर्ग व्यक्ति गरिमापूर्ण और संतोषजनक जीवन व्यतीत कर सकते हैं।[1]

वृद्धावस्था को आम तौर पर जीवन के उस चरण के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें व्यक्ति की आयु 60 वर्ष या उससे अधिक की हो। यह न केवल एक जैविक चरण है, बल्कि एक सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति भी है जो किसी व्यक्ति की सामाजिक भूमिकाओं, परिस्थिति और पारिवारिक रिश्तों को प्रभावित करती है। समाजशास्त्री ए० एम० शाह के अनुसार, बुढ़ापा एक सामाजिक संरचना है, जिसकी प्रकृति समाज की संरचना, संस्कृति और आर्थिक प्रबन्ध पर निर्भर करती है।[2] आधुनिकीकरण के वजह से औद्योगीकरण, शहरीकरण होने से पारंपरिक संयुक्त परिवार तंत्र में महत्वपूर्ण बदलाव आया है, जिसने बुजुर्गों की पारंपरिक भूमिका को क्षति पहुंचाई है। पहले के समय में, संयुक्त परिवारों में बुजुर्ग व्यक्ति निर्णय लेने और सामाजिक मार्गदर्शन प्रदान करने में अग्रणी भूमिका निभाते थे, लेकिन आधुनिक समाज में, उनकी भूमिका धीरे-धीरे सीमित हो चली है।[3]

बुजुर्गों के समायोजन में प्रमुख समस्याएं

आधुनिक समाज में बुजुर्गों के साथ समायोजन स्थापित करना, तेजी से हो रहे सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक बदलावों की वजह से, निरन्तर जटिल होता जा रहा है। पारंपरिक से आधुनिक जीवनशैली की ओर बदलाव के

* असिस्टेंट प्रोफेसर – समाजशास्त्र, राजकीय महिला महाविद्यालय, रॉबर्ट्सगंज, सोनभद्र

साथ, बुजुर्गों को अक्सर कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जो उनके शारीरिक स्वास्थ्य, आर्थिक स्थिरता, सामाजिक सम्बन्धों और मानसिक सेहत पर असर डालती हैं। उनके समायोजन की प्रमुख समस्याएं निम्नलिखित है -

1. शारीरिक और स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं

वृद्धावस्था में, प्राकृतिक जैविक उम्र बढ़ने की प्रक्रिया के कारण, शरीर के अन्दर कार्य करने की क्षमता धीरे-धीरे क्षीण होने लगती है और वे उच्च रक्तचाप, मधुमेह, हृदय रोग, गठिया, सुनने और आखों से संबंधी समस्याएं जैसी अनेक बीमारियों से ग्रसित हो जाते है। प्रतिरक्षा प्रणाली के कमजोर होने से संक्रमण और स्वास्थ्य सम्बन्धी अन्य जटिलताओं के प्रति संवेदनशील हो जाते है, जिससे उन्हें नियमित देखभाल और रोजमर्रा के कार्यों में सहायता तथा लंबे समय तक देखभाल की आवश्यकता पड़ती है। इन सभी स्वास्थ्य समस्याओं के कारण बुजुर्ग अक्सर दूसरों पर निर्भर हो जाते हैं। उनकी इसी शारीरिक दुर्बलता के कारण सामाजिक गतिविधियों में उनकी सहभागिता कम हो जाती है और वे अकेला महसूस करने लगते हैं, जिसका उनके आत्म-सम्मान और आत्मविश्वास पर नकारात्मक असर पड़ता है।[4]

2. आर्थिक असुरक्षा

वृद्धावस्था में आर्थिक असुरक्षा उनके समक्ष एक बड़ी चुनौती बन जाती है। विशेषकर 60 की उम्र में सेवानिवृत्ति मिलने के पश्चात, आय का नियमित स्रोत अक्सर समाप्त हो जाता है, जिससे उनके लिए रोजमर्रा की जरूरतों, स्वास्थ्य देखभाल आदि की आर्थिक जरूरतें पूरा करना मुश्किल हो जाता है। कुछ वृद्धों को पेंशन का सहारा तो प्राप्त होता है लेकिन आरामदायक जीवन व्यतीत करने के लिए धनराशि पर्याप्त नहीं होती । विशेष रूप से, वे बुजुर्ग जिन्होंने असंगठित क्षेत्र में काम किया है, उन्हें पेंशन या सामाजिक सुरक्षा का लाभ प्राप्त नहीं होता है। जिसके परिणामस्वरूप वह परिवार या बच्चों पर आश्रित हो जाते हैं, आर्थिक निर्भरता के कारण उनकी स्थिति दयनीय हो जाती है।[5]

3. सामाजिकअलगाव और अकेलापन

सामाजिक अलगाव और अकेलापन बुजुर्गों के लिए आम अनुभव सा हो गया है। आधुनिकीकरण, तेजी से बढ़ता शहरीकरण, रोजगार की तलाश में पलायन और एकल परिवार का बढ़ता चलन आदि ने वृद्धजनों के मध्य मेल-जोल के अवसर को कम कर दिया है जिससे उन्हें अकेलापन महसूस होता है क्योंकि परिवार के सदस्यों की व्यस्त जीवनशैली के कारण, बुजुर्ग मेल-जोल अक्सर सामाजिक अलगाव और अकेलेपन का अनुभव करते हैं। सामाजिक मेल-जोल की कमी और परिवार के सदस्यों से दूरी उनके मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर डालती है।[6]

4. मानसिक और भावनात्मक समस्याएं

वृद्धावस्था में आपसी मेल बैठाने की प्रक्रिया के दौरान, बुजुर्गों को जिन सबसे जटिल चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, वह मानसिक और भावनात्मक समस्याएं प्रमुख हैं। वृद्धावस्था प्राय: सेवानिवृत्ति, शारीरिक अस्वस्थता, जीवनसाथी या करीबी दोस्तों को खो देना, इन सभी कारणों से उनमें अकेलापन, उदासी और असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो जाती है। वृद्धावस्था में, अवसाद, चिंता और असुरक्षा की भावनाएं बढ़ना स्वाभाविक हैं क्योंकि जीवनसाथी की मृत्यु, बच्चों का दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण होना और सामाजिक रिश्तों में कमी उनके मानसिक तनाव को और बढ़ा सकता है। मानसिक स्वास्थ्य समस्याएं बुजुर्ग लोगों के लिए समायोजन स्थापित करने की प्रक्रिया को और भी जटिल बना देती हैं।[7] इसके अलावा, बुजुर्गों को याददाश्त कम होने, भ्रम और सोचने-समझने की क्षमता में कमी जैसी समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है, जिससे जीवन की बदलती परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाना उनके लिए और भी मुश्किल हो जाता है।

बुजुर्गों के समायोजन में परिवार की भूमिका

भारतीय समाज में परिवार सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है, जो बुजुर्गों के जीवन में सुरक्षा, सम्मान और सहारे की नींव रखता है। पारंपरिक रूप से संयुक्त परिवार व्यवस्था में, बुजुर्गों को विशेष सम्मान, देखभाल, सुरक्षा, निर्णय लेने की क्षमता और उनकी बुद्धिमत्ता को महत्व दिया जाता था। हालांकि, आधुनिक समाज में परिवार की संरचना में आए बदलावों के कारण उनकी स्थिति में काफी परिवर्तन आया है। बुजुर्गों के समायोजन में परिवार की भूमिका को निम्नलिखित रूप से समझा जा सकता है -

1. भावनात्मक सहारा और सुरक्षा

बुजुर्गों की भलाई में परिवार का सबसे महत्वपूर्ण योगदान भावनात्मक सहारा देना होता है। परिवार के सदस्यों द्वारा दिखाया गया स्नेह, सम्मान और समझ बुजुर्गों में सुरक्षा और भावनात्मक स्थिरता की भावना पैदा करता है। बच्चों और पोते-पोतियों के साथ नियमित बातचीत से उन्हें साथ मिलता है जिससे अकेलेपन तथा अलगाव की भावना कम होती है। परिवार बुजुर्गों को भावनात्मक सहारा प्रदान करता है। परिवार के सदस्यों द्वारा दिखाया गया प्यार, देखभाल और सम्मान बुजुर्गों के मानसिक स्वास्थ्य को मजबूत करता है और उन्हें जीवन में संतुष्टि और अपनेपन का एहसास कराता है ।[8]

2. आर्थिक सहायता और देखभाल

बुजुर्गों की आर्थिक जरूरतों को पूरा करने और उनकी उचित देखभाल सुनिश्चित करने में परिवार की अहम भूमिका होती है। कई बुजुर्ग अपनी आर्थिक सुरक्षा के लिए अपने बच्चों या रिश्तेदारों पर निर्भर रहते हैं, विशेष रूप से तब जब उनके पास पर्याप्त बचत या पेंशन के लाभ नहीं होते हैं। परिवार के सदस्य अक्सर चिकित्सा खर्च उठाने, दवाएं खरीदने

और स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी निभाते हैं। संयुक्त परिवारों में, बुजुर्गों को आम तौर पर ज्यादा आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होती है, जो उन्हें बुढ़ापे में स्थिरता और गरिमा बनाए रखने में मदद करती है।[9]

3. सामाजिक सम्मान और भागीदारी

वृद्धावस्था में सफल समायोजन के लिए सामाजिक सम्मान और भागीदारी जरूरी तत्व होते हैं। बुजुर्गों को पारिवारिक चर्चाओं और फैसले लेने की प्रक्रियाओं में शामिल करने से उनमें अपनी अहमियत और सामाजिक प्रतिष्ठा व पहचान का एहसास बढ़ता है। उनके जीवन का अनुभव और ज्ञान युवा पीढ़ियों को बहुमूल्य मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है, जिससे परिवार में स्थिरता और आपसी मेल-जोल बना रहता है। परिवार के भीतर निर्णय लेने की प्रक्रिया में बुजुर्गों को शामिल करना और उनकी राय का सम्मान करना उनके सामाजिक समायोजन को मजबूत करता है। यह भागीदारी उनके आत्म-सम्मान और सामाजिक पहचान की भावना को बनाए रखने में मदद करती है, जिससे वे परिवार के सक्रिय और सम्मानित सदस्य बने रहते हैं।[10]

बुजुर्गों के समायोजन में समाज की भूमिका

वर्तमान समय में, बुजुर्गों के सफल समायोजन में समाज एक बहुत ही महत्वपूर्ण और सहायक भूमिका निभाता है। पारिवारिक ढांचों और सामाजिक मूल्यों में तेजी से आ रहे बदलावों के कारण, बुजुर्गों की देखभाल की जिम्मेदारी अब केवल परिवार तक ही सीमित नहीं रह गई है, बल्कि यह समाज, सरकारी संस्थाओं और सामुदायिक संगठनों की एक सामूहिक जिम्मेदारी बन गई है। बुजुर्गों के समायोजन में समाज की भूमिका निम्नलिखित है -

1. सामाजिक सुरक्षा और सरकारी योजनाएं

सरकार द्वारा लागू की गई सामाजिक सुरक्षा योजनाएं जैसे कि वृद्धावस्था पेंशन, स्वास्थ्य बीमा और वरिष्ठ नागरिक कल्याण कार्यक्रम, बुजुर्गों के समायोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वृद्धावस्था पेंशन, स्वास्थ्य बीमा, रियायती चिकित्सा सेवाएं और वरिष्ठ नागरिक कल्याण योजनाओं जैसे कार्यक्रम वित्तीय स्थिरता प्रदान करते हैं और बुजुर्गों पर पड़ने वाले आर्थिक बोझ को कम करते हैं। ये योजनाएं विशेष रूप से उन लोगों के लिए महत्वपूर्ण हैं जिनके पास नियमित आय, बचत या पारिवारिक सहायता का अभाव है। ये योजनाएं उनकी आर्थिक स्थिरता और सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करती हैं, जिससे उनकी बुनियादी जरूरतें पूरी करने में मदद मिलती हैं, उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार होता है।[11]

2. सामुदायिक सहारा और सामाजिक भागीदारी

बुजुर्गों के लिए सामाजिक समायोजन की प्रक्रिया में समाज में विभिन्न सामाजिक संगठन, वरिष्ठ नागरिक क्लब और स्वयंसेवी संस्थाएं उनको सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने के अवसर प्रदान करती हैं। ये गतिविधियां सामाजिक रूप से सक्रिय रहने, मेल-जोल बनाए रखने, अलगाव की समस्या, अकेलेपन की भावना को कम करने और भावनात्मक भलाई को बेहतर बनाने में मदद करती हैं।[12]

3. स्वास्थ्य सेवाएं और परामर्श

समाज में स्वास्थ्य सेवा और परामर्श सेवाओं की उपलब्धता बुजुर्गों के सफल समायोजन को सुनिश्चित करने में एक अहम कारक है। जैसे-जैसे लोगों की उम्र बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे पुरानी बीमारियों, शारीरिक अक्षमताओं और मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी चुनौतियों के कारण उनकी स्वास्थ्य संबंधी जरूरतें बढ़ती जाती हैं। नियमित चिकित्सीय जाँच, विशेष उपचार और पुनर्वास सेवाओं तक पहुँच बुजुर्गों को अच्छा स्वास्थ्य और आत्मनिर्भरता बनाए रखने में मदद करती है। समाज में स्वास्थ्य सेवाओं और परामर्श सुविधाओं के विकास से बुजुर्गों के जीवन की गुणवत्ता में काफी सुधार होता है। नियमित स्वास्थ्य जाँच, मानसिक स्वास्थ्य परामर्श और पुनर्वास सेवाएं उनके लिए समायोजन की प्रक्रिया को आसान और अधिक प्रभावी बनाती हैं।[13]

4. समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, बुजुर्गों का समाज में सामंजस्य बैठाना काफी हद तक समाज की ढांचा, सामाजिक भूमिकाओं और सामाजिक सहायक प्रणालियों की उपलब्धता पर निर्भर करता है। परिवार, समुदाय और सरकार जैसी सामाजिक संस्थाएं बुजुर्गों की भलाई और सामाजिक एकीकरण पर गहरा प्रभाव डालती हैं। टालकॉट पार्सन्स के अनुसार, समाज में हर व्यक्ति कुछ खास सामाजिक भूमिकाएं निभाता है, और जब बुढ़ापे में, खासकर सेवानिवृत्ति के बाद या पारिवारिक जिम्मेदारियों में बदलाव के कारण, ये भूमिकाएं बदल जाती हैं या कम हो जाती हैं, तो व्यक्तियों को अपनी पहचान और सामाजिक प्रासंगिकता बनाए रखने के लिए तालमेल बिठाने की एक प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है।[14] इसके अलावा, आधुनिकीकरण का सिद्धांत यह बताता है कि औद्योगीकरण, शहरीकरण और तकनीकी प्रगति ने पारंपरिक पारिवारिक व्यवस्थाओं को परिवर्तित कर दिया है, जिससे संयुक्त परिवारों में कमी आई है और बुजुर्गों के लिए पारंपरिक सहायता संरचना कमजोर हुई हैं। इसके परिणामस्वरूप, कई बुजुर्ग सामाजिक अलगाव, परिवार के अन्दर कम अधिकार और भावनात्मक असुरक्षा महसूस करते हैं। इसलिए, बुजुर्गों को सामाजिक सुरक्षा, सम्मान और सक्रिय भागीदारी के अवसर प्रदान करने के लिए परिवारों, समुदायों और सरकारी संस्थाओं द्वारा समन्वित प्रयास करना जरूरी है, ताकि आधुनिक समाज में बुजुर्गों का सफल सामंजस्य और भलाई सुनिश्चित की जा सके।

वृद्धजनों के समायोजन के लिए सुझाव

वृद्धजनों के सफल समायोजन के लिए, परिवार, समाज और सरकार तीनों को शामिल करते हुए एक व्यापक और समन्वित दृष्टिकोण अपनाना जरूरी है। सबसे प्रथम, परिवारों को बुजुर्ग सदस्यों के प्रति सम्मान, देखभाल और सहयोग की भावना विकसित करनी चाहिए, ताकि उन्हें यह महसूस हो कि उनकी कद्र की जाती है और वे भावनात्मक रूप से सुरक्षित हैं। साथ ही, परिवार के सदस्यों को नियमित संवाद करके और उनका साथ देकर उनकी भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक जरूरतों पर भी ध्यान देना चाहिए। सरकार को वृद्धजनों के लिए आर्थिक और सामाजिक स्थिरता सुनिश्चित करने हेतु पेंशन, स्वास्थ्य सेवाएं और कल्याणकारी कार्यक्रमों जैसी सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का विस्तार करना चाहिए और उन्हें प्रभावी ढंग से लागू करना चाहिए। समाज को अपनी ओर से, सक्रिय और स्वस्थ बुढ़ापे को बढ़ावा देने के लिए स्वास्थ्य सेवा और मनोरंजन सुविधाओं को बेहतर बनाना चाहिए, जिसमें वरिष्ठ नागरिक केंद्र और सामुदायिक कार्यक्रम शामिल होना चाहिए जिससे वे सक्रिय और स्वस्थ्य जीवन जी सके। इसके अलावा, बुजुर्गों को सामाजिक, सांस्कृतिक और सामुदायिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। जिससे उनका अकेलापन कम हो, उनका आत्मविश्वास बढ़े और उनमें अपनेपन की भावना मजबूत हो। इस तरह के मिले-जुले प्रयासों से आधुनिक समाज में बुजुर्गों के जीवन की गुणवत्ता और उनके समग्र समायोजन में काफी सुधार हो सकता है।[15]

निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर, यह स्पष्ट है कि वृद्धजनों के मध्य समायोजन बैठाने की प्रक्रिया केवल व्यक्तिगत प्रयासों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह काफी हद तक परिवार, समाज और सरकार की सामूहिक जिम्मेदारी पर निर्भर करती है। आधुनिक समाज में, तेजी से हो रहे औद्योगीकरण, शहरीकरण, पलायन और पारिवारिक संरचना में बदलावों ने बुजुर्गों के लिए कई सामाजिक, आर्थिक, स्वास्थ्य और भावनात्मक चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं, जिससे उनका समायोजन बैठाना और भी जटिल हो गया है। ऐसे बदलते सामाजिक माहौल में, पारिवारिक सहयोग, सम्मान, देखभाल और भावनात्मक सुरक्षा बुजुर्गों के आत्मविश्वास, गरिमा और जीवन-संतोष को मजबूत करने में अहम भूमिका निभाते हैं। इसके अलावा, विभिन्न सामाजिक संस्थाएं, सामुदायिक संगठन और सरकारी कल्याणकारी कार्यक्रम भी वृद्धजनों के जीवन की गुणवत्ता को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सामाजिक सुरक्षा के उपाय, सुलभ स्वास्थ्य सेवाएं, सामुदायिक भागीदारी और सामाजिक जागरूकता की पहलें उनके सामाजिक एकीकरण में योगदान देती हैं और बुढ़ापे में एक गरिमापूर्ण जीवन सुनिश्चित करती हैं। इसलिए, परिवारों के भीतर आपसी सम्मान और सहायक संबंधों को बढ़ावा देना, बुजुर्गों के प्रति एक सकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण विकसित करना और सरकार द्वारा प्रभावी सामाजिक नीतियों तथा कल्याणकारी योजनाओं को लागू करना अत्यंत आवश्यक है। परिवार, समाज और सरकार के समन्वित प्रयासों के माध्यम से, बुजुर्गों का सफल तालमेल सुनिश्चित किया जा सकता है, जिससे उन्हें समकालीन समाज में सुरक्षा, सम्मान और एक सार्थक तथा संतोषजनक जीवन प्राप्त हो सके।

संदर्भ ग्रंथ

1. आहूजा, राम (2014), *भारत में सामाजिक समस्याएँ*, जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स, पृ0 215–220 ।
2. शाह, ए0 एम0 (1998), द फेमिली इन इण्डिया : क्रिटिकल एसे, नई दिल्ली: आरिएंट लांगमैन लि0, पृ0 145–152 ।
3. सिंह, योगेन्द्र (2010), माडर्नाइजेशन आफ इण्डियन ट्रेडिशन, जयपुर: रावत पब्लिकेशन, पृ0 98–105 ।
4. पार्क, के0 (2015), पार्क्स टेक्स्ट बुक आफ प्रीवेन्टिव एण्ड *सोशल मेडिसीन* (22nd Edition), जबलपुर: बनारसीदास, भनोत प्रकाशन, पृ0 610–615 ।
5. जैन, पी0 सी0 (2011), *श्रम समस्याएँ एवं सामाजिक कल्याण*, नई दिल्ली: अटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृ0 182–188 ।
6. शर्मा, के0 एल0 (2012), *भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन* , नई दिल्ली: रावत पब्लिशर्स, पृ0 256–262 ।
7. गुप्ता, दीपांकर (2012), सोशल स्ट्रेफिकेशन, नई दिल्ली: आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी , इंडिया, पृ0 120–126 ।
8. दुबे, लीला (2001), *Anthropological Explorations in Gender: Intersecting Fields*, नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स इंडिया प्रा0 लि0, पृ0 74–80 ।
9. देसाई, नीरा (2005), वोमेन एण्ड सोसाइटी इन इंडिया, नई दिल्ली: अजंता पब्लिकेशन्स, पृ0 210–215 ।
10. शर्मा, आर0 एन0 (2013), *सामाजिक समस्याएँ* , नई दिल्ली: अटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृ0 301–307 ।
11. भारत सरकार, सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय (2020), *वृद्धजन कल्याण योजनाएँ रिपोर्ट*, नई दिल्ली: गवर्नमेंट ऑफ इंडिया प्रेस, पृ0 45–52 ।
12. विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO), (2018), *Ageing and Health Report*, जिनेवा: World Health Organization, पृ0 33–40 ।
13. चौधरी, डी0 पॉल0 (2009), सोशल वेलफेयर एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली: अटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पृ0 301–30, पृ0 165–170 ।
14. पार्सन्स, टालकॉट (1951), द सोशल सिस्टम, न्यूयॉर्क: फ्री प्रेस, पृ0 24–30 ।
15. एट्चली, रॉबर्ट (1989), *Social Forces and Aging*, बेलमोंट: वाड्सवर्थ पब्लिशिंग कंपनी, पृ0 112–118 ।

छोटानागपुर क्षेत्र में 1857 का भारतीय विद्रोहः पाण्डेय गणपत राय के संगठनात्मक नेतृत्व का ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ. कन्हैया प्रसाद सिन्हा*

सार–

यह शोध पत्र छोटानागपुर क्षेत्र में 1857 का भारतीय विद्रोह की प्रकृति और स्वरूप का विश्लेषण करता है, विशेष रूप से पाण्डेय गणपत राय के संगठनात्मक नेतृत्व के संदर्भ में। अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि किस प्रकार स्थानीय सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक परिस्थितियों ने विद्रोह को प्रभावित किया तथा क्षेत्रीय नेतृत्व ने इसे एक संगठित आंदोलन का रूप दिया। शोध में पाया गया कि छोटानागपुर में 1857 का विद्रोह केवल सिपाही विद्रोह नहीं था, बल्कि यह किसानों, आदिवासियों और स्थानीय जमींदारों की व्यापक भागीदारी वाला जनआंदोलन था। पाण्डेय गणपत राय ने विभिन्न समुदायों को एक मंच पर लाकर संगठनात्मक एकता स्थापित की, जो विद्रोह की प्रमुख शक्ति बनी। उनकी रणनीतियों में गुरिल्ला युद्ध, स्थानीय संसाधनों का उपयोग और सामरिक समन्वय विशेष रूप से उल्लेखनीय थे। अध्ययन यह भी दर्शाता है कि मुख्यधारा इतिहासलेखन में इस क्षेत्र के योगदान को अपेक्षित महत्व नहीं मिला है, जिसके कारण ऐसे स्थानीय नायकों की भूमिका सीमित रूप में प्रस्तुत हुई है। इस शोध के माध्यम से छोटानागपुर के विद्रोह को व्यापक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया गया है। अंततः, यह निष्कर्ष निकलता है कि पाण्डेय गणपत राय का नेतृत्व न केवल 1857 के विद्रोह को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण था, बल्कि इसने भविष्य के जनआंदोलनों के लिए भी प्रेरणा प्रदान की। यह अध्ययन 1857 के विद्रोह की बहुआयामी प्रकृति को समझने में एक महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत करता है।

मूल शब्द– 1857 का भारतीय विद्रोह, छोटानागपुर, पाण्डेय गणपत राय, संगठनात्मक नेतृत्व, गुरिल्ला युद्धनीति, आदिवासी प्रतिरोध, औपनिवेशिक शासन, एवं जनआंदोलन आदि.।

1857 का भारतीय विद्रोह औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध भारत में व्यापक असंतोष की पहली संगठित अभिव्यक्ति माना जाता है। यद्यपि इस विद्रोह का केंद्र प्रायः मेरठ, दिल्ली और कानपुर जैसे प्रमुख नगरों को माना जाता है, परंतु इसका प्रभाव देश के अनेक दूरस्थ क्षेत्रों तक फैला था। छोटानागपुर क्षेत्र, जो वर्तमान झारखण्ड का महत्वपूर्ण भाग है, भी इस व्यापक आंदोलन से अछूता नहीं रहा।

छोटानागपुर की सामाजिक संरचना मुख्यतः आदिवासी और कृषक समुदायों पर आधारित थी, जिनकी जीवन–शैली प्रकृति और पारंपरिक अधिकारों से गहराई से जुड़ी हुई थी। ब्रिटिश शासन के आगमन के बाद भूमि व्यवस्था में परिवर्तन, करों में वृद्धि और बाहरी जमींदारों का हस्तक्षेप स्थानीय समाज में असंतोष का कारण बना। यह असंतोष धीरे–धीरे विद्रोह में परिवर्तित हुआ।

झारखण्ड, विशेषकर छोटानागपुर में 1857 का भारतीय विद्रोह की भूमिका पर पिछले एक दशक में शोध कार्यों में धीरे–धीरे वृद्धि हुई है। हालांकि मुख्यधारा इतिहासलेखन अब भी उत्तर भारत के प्रमुख केंद्रों पर केंद्रित है, हाल के अध्ययनों ने क्षेत्रीय नेतृत्व–विशेषकर पाण्डेय गणपत रायकृकी भूमिका को पुनः मूल्यांकित करने का प्रयास किया है।

कुमार (2015) ने अपने अध्ययन में 1857 के विद्रोह को एक "बहु–क्षेत्रीय जनआंदोलन" के रूप में व्याख्यायित किया है। उनके अनुसार छोटानागपुर क्षेत्र में विद्रोह केवल सिपाहियों तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें स्थानीय जमींदारों, किसानों और आदिवासी समुदायों की सक्रिय भागीदारी थी। कुमार यह भी तर्क देते हैं कि पाण्डेय गणपत राय का नेतृत्व इस क्षेत्र में विद्रोह को संगठित रूप देने में निर्णायक था। शर्मा (2017) ने झारखण्ड के क्षेत्रीय इतिहास पर ध्यान केंद्रित करते हुए यह स्पष्ट किया कि औपनिवेशिक भूमि नीतियों और कर व्यवस्था ने स्थानीय असंतोष को जन्म दिया। उनके अध्ययन में संथाल विद्रोह को 1857 की पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। शर्मा का निष्कर्ष है कि छोटानागपुर में विद्रोह की प्रकृति सामाजिक–आर्थिक प्रतिरोध के रूप में अधिक स्पष्ट थी। सिंह (2019) ने पाण्डेय गणपत राय के सैन्य और

* शोधार्थी (इतिहास विभाग), मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

संगठनात्मक नेतृत्व का विश्लेषण करते हुए यह बताया कि उन्होंने गुरिल्ला युद्धनीति और स्थानीय संसाधनों का प्रभावी उपयोग किया। सिंह के अनुसार गणपत राय की रणनीतियाँ पारंपरिक सैन्य ढाँचे से भिन्न थीं और स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल थीं।

वर्मा (2021) ने अपने शोध में इतिहास लेखन की सीमाओं को उजागर किया है। उनके अनुसार मुख्यधारा इतिहास में छोटानागपुर के योगदान को इसलिए कम महत्व मिला क्योंकि अधिकांश स्रोत औपनिवेशिक अभिलेखों पर आधारित थे, जिनमें स्थानीय विद्रोहों को व्यवस्थित रूप से कम करके दिखाया गया।

इस क्षेत्र में विद्रोह को संगठित रूप देने में पाण्डेय गणपत राय की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। वे केवल एक सैन्य नेता ही नहीं, बल्कि एक कुशल संगठक भी थे, जिन्होंने विभिन्न सामाजिक समूहों को एक मंच पर लाने का प्रयास किया। उनके नेतृत्व में विद्रोह ने एक संगठित और रणनीतिक स्वरूप ग्रहण किया।

मुख्यधारा इतिहास लेखन में अक्सर छोटानागपुर के योगदान को सीमित रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि इतिहासकारों ने अधिकतर बड़े शहरी और सैन्य केंद्रों पर ध्यान केंद्रित किया। परिणामस्वरूप, स्थानीय स्तर पर हुए संघर्षों और नेताओं के योगदान को अपेक्षित महत्व नहीं मिल पाया।

यह अध्ययन पत्र छोटानागपुर क्षेत्र में 1857 के विद्रोह की प्रकृति और उसमें पाण्डेय गणपत राय के संगठनात्मक नेतृत्व का विश्लेषण करता है। यह अध्ययन इस बात पर विशेष ध्यान देता है कि किस प्रकार स्थानीय परिस्थितियों, संसाधनों और सामाजिक संरचना ने विद्रोह को प्रभावित किया।

इस अध्ययन का उद्देश्य न केवल एक क्षेत्रीय इतिहास को उजागर करना है, बल्कि 1857 के विद्रोह की व्यापकता और विविधता को समझना भी है। यह अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि स्थानीय नेतृत्व और जनसहभागिता ने औपनिवेशिक शासन को चुनौती देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

छोटानागपुर का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि– छोटानागपुर क्षेत्र में 1857 के विद्रोह की पृष्ठभूमि औपनिवेशिक नीतियों और सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों से जुड़ी हुई थी। ब्रिटिश शासन ने यहाँ की पारंपरिक भूमि व्यवस्था को बदल दिया, जिससे स्थानीय समुदायों के अधिकार प्रभावित हुए। करों में वृद्धि और शोषणकारी नीतियों ने किसानों और आदिवासियों को असंतुष्ट कर दिया।

इस असंतोष का एक प्रमुख उदाहरण संथाल विद्रोह था, जिसने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध व्यापक जनआक्रोश को जन्म दिया। इस विद्रोह ने क्षेत्र में प्रतिरोध की भावना को और अधिक सुदृढ़ किया।

जब 1857 का विद्रोह प्रारंभ हुआ, तब छोटानागपुर में पहले से मौजूद असंतोष ने इसे व्यापक समर्थन प्रदान किया। स्थानीय नेताओं ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए जनता को संगठित किया और औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध संघर्ष को तेज किया। दास (2023) ने आदिवासी दृष्टिकोण से 1857 के विद्रोह का अध्ययन किया। उनके अनुसार यह विद्रोह केवल राजनीतिक नहीं था, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान के संरक्षण का भी संघर्ष था। दास ने यह भी रेखांकित किया कि पाण्डेय गणपत राय जैसे नेताओं ने विभिन्न समुदायों को एकजुट कर एक साझा प्रतिरोध की भावना विकसित की।

हाल के अध्ययन, जैसे मिश्रा (2024) और अग्रवाल (2025), ने डिजिटल आर्काइव और स्थानीय स्रोतों का उपयोग करते हुए इस विषय पर नए दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। इन अध्ययनों में छोटानागपुर के विद्रोह को एक संगठित और योजनाबद्ध आंदोलन के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें पाण्डेय गणपत राय की भूमिका केंद्रीय थी। समग्र रूप से, 2011–2025 के बीच के साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि छोटानागपुर में 1857 के विद्रोह पर शोध अभी भी विकासशील अवस्था में है। हालांकि हाल के अध्ययनों ने क्षेत्रीय नेतृत्व और जनसहभागिता को महत्व देना शुरू किया है, फिर भी इस क्षेत्र में और गहन शोध की आवश्यकता बनी हुई है।

छोटानागपुर में विद्रोह की प्रकृति विशिष्ट थी। यह केवल सैनिक विद्रोह नहीं था, बल्कि सामाजिक और आर्थिक शोषण के विरुद्ध एक व्यापक जनआंदोलन था। स्थानीय भूगोल ने विद्रोहियों को रणनीतिक लाभ प्रदान किया, जिससे वे अंग्रेजों के विरुद्ध प्रभावी संघर्ष कर सके।

पाण्डेय गणपत राय : एक परिचय– पाण्डेय गणपत राय 1857 के विद्रोह के दौरान छोटानागपुर क्षेत्र के प्रमुख नेताओं में से एक थे। उनका जन्म एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था और वे प्रशासनिक तथा सामाजिक संरचना से भली–भांति परिचित थे। इस कारण वे स्थानीय समाज के विभिन्न वर्गों के साथ प्रभावी संवाद स्थापित करने में सक्षम थे।

गणपत राय का व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे एक कुशल रणनीतिकार, संगठक और प्रेरक नेता थे। उन्होंने न केवल विद्रोह का नेतृत्व किया, बल्कि विभिन्न समुदायों को एकजुट करने का भी प्रयास किया। उनके नेतृत्व में किसानों, आदिवासियों और स्थानीय जमींदारों ने मिलकर ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष किया। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने स्थानीय परिस्थितियों को समझते हुए रणनीतियों का निर्माण किया। उन्होंने पारंपरिक युद्ध के बजाय गुरिल्ला युद्धनीति को अपनाया, जिससे सीमित संसाधनों के बावजूद वे अंग्रेजी सेना को चुनौती दे सके।

गणपत राय ने अन्य क्षेत्रीय नेताओं के साथ भी समन्वय स्थापित किया, जिससे विद्रोह को व्यापक स्वरूप मिला। उनका नेतृत्व यह दर्शाता है कि 1857 का विद्रोह केवल एक आकस्मिक घटना नहीं था, बल्कि यह सुनियोजित और संगठित प्रयासों का परिणाम था। हालांकि अंततः उन्हें अंग्रेजों द्वारा पकड़ लिया गया और दंडित किया गया, फिर भी उनका योगदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उनका जीवन और संघर्ष स्थानीय नेतृत्व की शक्ति और प्रभाव को दर्शाता है।

पाण्डेय गणपत राय कि सैन्य रणनीतियाँ– पाण्डेय गणपत राय की सैन्य रणनीतियाँ उनकी व्यावहारिक समझ और स्थानीय परिस्थितियों के ज्ञान पर आधारित थीं। उन्होंने पारंपरिक युद्ध पद्धतियों के बजाय गुरिल्ला युद्धनीति को अपनाया, जो उस समय की परिस्थितियों में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुई। उन्होंने जंगलों और पहाड़ी क्षेत्रों का उपयोग करते हुए अंग्रेजी सेना पर अचानक हमले किए। इस प्रकार की रणनीति ने उन्हें कम संसाधनों के बावजूद प्रभावी प्रतिरोध करने में सहायता प्रदान की।

इसके अतिरिक्त, उन्होंने संचार और आपूर्ति मार्गों को बाधित करने पर विशेष ध्यान दिया। इससे अंग्रेजी प्रशासन की कार्यक्षमता प्रभावित हुई और विद्रोहियों को बढ़त मिली।

गणपत राय ने स्थानीय संसाधनों का भी प्रभावी उपयोग किया। उन्होंने ग्रामीण और आदिवासी समुदायों को युद्ध में शामिल किया और उन्हें प्रशिक्षण प्रदान किया। इससे विद्रोह को व्यापक समर्थन मिला और यह एक संगठित आंदोलन के रूप में विकसित हुआ। उनकी रणनीतियों में लचीलापन और अनुकूलनशीलता भी देखने को मिलती है। वे परिस्थितियों के अनुसार अपनी योजनाओं में परिवर्तन करते थे, जिससे वे लंबे समय तक संघर्ष जारी रख सके।

संगठनात्मक क्षमता– पाण्डेय गणपत राय की संगठनात्मक क्षमता उनके नेतृत्व की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक थी। उन्होंने विभिन्न सामाजिक समूहों को एकजुट करने का सफल प्रयास किया। उन्होंने विद्रोहियों को छोटे–छोटे समूहों में संगठित किया, जिससे संचालन और नियंत्रण आसान हो गया। प्रत्येक समूह को विशेष जिम्मेदारियाँ दी गईं, जिससे कार्यकुशलता बढ़ी। गणपत राय ने अन्य नेताओं के साथ भी समन्वय स्थापित किया, जिससे विद्रोह को व्यापक स्वरूप मिला। उन्होंने जनसमर्थन जुटाने पर विशेष ध्यान दिया, जो विद्रोह की सफलता के लिए आवश्यक था। उनकी संगठनात्मक क्षमता ने विद्रोह को एक सशक्त और प्रभावी आंदोलन में परिवर्तित किया।

शोध प्रश्न

1. छोटानागपुर में 1857 के विद्रोह की प्रकृति क्या थी?
2. पाण्डेय गणपत राय ने संगठनात्मक नेतृत्व कैसे स्थापित किया?
3. उनकी सैन्य रणनीतियों में स्थानीय कारकों की क्या भूमिका थी?
4. विद्रोह में जनसहभागिता का स्तर क्या था?
5. मुख्यधारा इतिहास में इस क्षेत्र की भूमिका को सीमित क्यों किया गया?

चुनौतियाँ और सीमाएँ– छोटानागपुर के विद्रोहियों को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। संसाधनों की कमी, आधुनिक हथियारों का अभाव और सीमित प्रशिक्षण उनके लिए प्रमुख बाधाएँ थीं। अंग्रेजी सेना संगठित और तकनीकी रूप से उन्नत थी, जिससे विद्रोहियों के लिए लंबे समय तक संघर्ष करना कठिन हो गया। इसके अतिरिक्त, विभिन्न क्षेत्रों के विद्रोहियों के बीच समन्वय की कमी भी एक महत्वपूर्ण समस्या थी। इन सीमाओं के बावजूद, विद्रोहियों ने अपने साहस और संगठनात्मक क्षमता के बल पर प्रभावी प्रतिरोध किया।

परिणाम और प्रभाव– छोटानागपुर क्षेत्र में 1857 के विद्रोह के परिणाम बहुआयामी थे। यद्यपि यह विद्रोह अंततः सफल नहीं हो सका, फिर भी इसके प्रभाव दूरगामी रहे। सबसे पहले, इस विद्रोह ने ब्रिटिश शासन के प्रति व्यापक असंतोष को उजागर किया। यह स्पष्ट हो गया कि औपनिवेशिक नीतियाँ स्थानीय समाज के लिए अस्वीकार्य थीं। दूसरे, इस विद्रोह ने स्थानीय नेतृत्व की शक्ति को प्रदर्शित किया। पाण्डेय गणपत राय जैसे नेताओं ने यह सिद्ध किया कि सीमित संसाधनों के बावजूद प्रभावी संगठन और रणनीति के माध्यम से

औपनिवेशिक सत्ता को चुनौती दी जा सकती है। तीसरे, इस विद्रोह ने भविष्य के आंदोलनों के लिए प्रेरणा प्रदान की। झारखण्ड क्षेत्र में बाद में हुए आदिवासी आंदोलनों में 1857 की स्मृति और उससे मिली प्रेरणा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

इसके अतिरिक्त, इस विद्रोह ने सामाजिक एकता को भी बढ़ावा दिया। विभिन्न समुदायों ने मिलकर संघर्ष किया, जिससे एक सामूहिक पहचान का विकास हुआ। हालाँकि, इस विद्रोह के बाद ब्रिटिश शासन ने दमनकारी नीतियों को और अधिक कठोर बना दिया। इससे स्थानीय समाज को और अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। फिर भी, इस विद्रोह का ऐतिहासिक महत्व अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह न केवल औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध संघर्ष का प्रतीक है, बल्कि यह स्थानीय नेतृत्व और जनसहभागिता की शक्ति को भी दर्शाता है।

चर्चा– छोटानागपुर में 1857 के विद्रोह का अध्ययन यह दर्शाता है कि यह आंदोलन केवल सैन्य विद्रोह नहीं था, बल्कि यह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक असंतोष का परिणाम था। पाण्डेय गणपत राय की भूमिका इस संदर्भ में विशेष महत्व रखती है। उनका नेतृत्व यह स्पष्ट करता है कि स्थानीय स्तर पर भी विद्रोह अत्यंत संगठित और प्रभावी था। यह अध्ययन यह भी दर्शाता है कि इतिहास लेखन में क्षेत्रीय असंतुलन मौजूद है। बड़े केंद्रों पर अधिक ध्यान देने के कारण छोटे क्षेत्रों के योगदान को उपेक्षित किया गया है। अतः आवश्यक है कि ऐसे अध्ययनों के माध्यम से क्षेत्रीय इतिहास को पुनर्स्थापित किया जाए और 1857 के विद्रोह की व्यापकता को समझा जाए।

निष्कर्षतः, छोटानागपुर में 1857 का विद्रोह एक महत्वपूर्ण क्षेत्रीय आंदोलन था, जिसमें पाण्डेय गणपत राय की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। उनकी संगठनात्मक क्षमता और सैन्य रणनीतियों ने विद्रोह को प्रभावी बनाया। हालाँकि यह विद्रोह सफल नहीं हो सका, फिर भी इसका ऐतिहासिक महत्व अत्यंत गहरा है। यह अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को समझने के लिए क्षेत्रीय योगदानों का समुचित मूल्यांकन आवश्यक है।

संदर्भ सूची

1. बिपन चंद्र आधुनिक भारत का इतिहास नई दिल्ली– ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2016।
2. आर.सी. मजूमदार. 1857 का विद्रोह नई दिल्लीः मैकमिलन, 2014।
3. एस.एन. सेन. अठारह सौ सत्तावन (1857), नई दिल्लीः प्रकाशन विभाग, 2018।
4. के.के. दत्ता 1857 के विद्रोह में बिहार (बिहार इन द मुटिनी आफ 1857). पटना– बिहार पुरातत्व प्रकाशन, 2012।
5. कुमार, आर. "1857 का विद्रोह और क्षेत्रीय नेतृत्वरू छोटानागपुर का अध्ययन।" इंडियन हिस्टोरिकल रिव्यू 42, सं. 2 (2015), 120–138।
6. शर्मा, एस. "औपनिवेशिक नीतियाँ और झारखण्ड में प्रतिरोध।" जर्नल ऑफ ट्राइबल स्टडीज 9, सं. 1 (2017), 55–70।
7. सिंह, पी. "पाण्डेय गणपत राय की सैन्य रणनीति का विश्लेषण।" मॉडर्न इंडियन हिस्ट्री जर्नल 14, सं. 3 (2019), 200–215।
8. वर्मा, ए. "इतिहास लेखन और क्षेत्रीय उपेक्षाः छोटानागपुर का संदर्भ।" सोशल साइंस रिव्यू 18, सं. 2 (2021), 89:104।
9. दास, एम. "आदिवासी दृष्टिकोण से 1857 का विद्रोह।" ट्राइबल रिसर्च जर्नल 11, सं. 2 (2023)– 145:160।
10. मिश्रा, के. "डिजिटल स्रोतों के आधार पर 1857 का पुनर्मूल्यांकन।" इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसीडिंग्स 85 (2024): 300–312।
11. अग्रवाल, डी. "छोटानागपुर में 1857 का विद्रोह– एक पुनर्पाठ।" कॉन्टेम्परेरी हिस्टोरिकल स्टडीज 6, सं. 1 (2025): 50–68।
12. नेशनल आर्काइव्स ऑफ इंडिया. 1857 से संबंधित अभिलेख. विभिन्न वर्ष।
13. झारखण्ड राज्य अभिलेखागार. क्षेत्रीय दस्तावेज और रिपोर्ट, विभिन्न वर्ष।
14. इंडियन काउंसिल ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च. शोध प्रकाशन एवं रिपोर्ट, विभिन्न वर्ष।

◀◀ ▶▶

हिंदी महिला साहित्यकारों का योगदान : सामाजिक–राजनीतिक चेतना

डॉ. पुनीता कुमारी*

सार

उन्नीसवीं सदी के मध्य तक भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति अत्यंत सीमित और पराधीन थी, जहाँ उनका अस्तित्व मुख्यतः घरेलू कार्यों तक ही सीमित माना जाता था। सामाजिक कुरीतियाँ जैसे बाल-विवाह, सती प्रथा, दहेज और स्त्री शिक्षा का अभाव उनके विकास में प्रमुख बाधाएँ थीं। किन्तु 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात भारतीय समाज में नवजागरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई, जिसमें सामाजिक सुधारकों और राष्ट्रवादी नेताओं के साथ-साथ महिला साहित्यकारों ने भी सक्रिय भूमिका निभाई। इन साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से न केवल सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया, बल्कि महिलाओं में आत्मचेतना और अधिकारों के प्रति जागरूकता भी उत्पन्न की।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में जब स्वतंत्रता संग्राम जनांदोलन का रूप ले रहा था, तब महिलाओं ने भी इसमें सक्रिय भागीदारी की। इस सहभागिता ने उनके साहित्य को नई दिशा प्रदान की, जिसमें सामाजिक और राजनीतिक चेतना का समावेश हुआ। हिंदी की महिला लेखिकाओं ने अपने साहित्य में नारी उत्पीड़न, लैंगिक असमानता, औपनिवेशिक शोषण और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध मुखर आवाज उठाई। उन्होंने साहित्य को केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम न मानकर उसे परिवर्तन के साधन के रूप में स्थापित किया।

1850 से 1950 के मध्य की महिला साहित्यकारों ने न केवल साहित्यिक सृजन किया, बल्कि सामाजिक आंदोलनों, स्वतंत्रता संग्राम और राजनीतिक प्रक्रियाओं में भी भाग लिया। उनके प्रयासों का परिणाम आधुनिक भारत में महिलाओं के अधिकारों, शिक्षा और राजनीतिक भागीदारी में वृद्धि के रूप में दिखाई देता है।
मुख्य शब्द: हिंदी साहित्यकार, सामाजिक चेतना, महिला सशक्तिकरण, स्वतंत्रता संग्राम, राजनीतिक चेतना, संविधान निर्माण

प्रस्तावना

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हिंदी साहित्य के क्षेत्र में महिलाओं का प्रवेश एक ऐतिहासिक और क्रांतिकारी घटना के रूप में देखा जाता है। यह वह समय था जब भारतीय समाज गहरे पितृसत्तात्मक ढाँचे में जकड़ा हुआ था और महिलाओं की भूमिका को सीमित कर दिया गया था। ऐसे परिवेश में महिला साहित्यकारों का उभरना न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में भी अत्यंत प्रभावशाली सिद्ध हुआ।

प्रारंभिक महिला लेखिकाओं ने समाज में व्याप्त असमानताओं और अन्यायपूर्ण परंपराओं के विरुद्ध अपनी लेखनी को एक सशक्त हथियार के रूप में प्रयोग किया। उन्होंने शिक्षा, आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय के मुद्दों को अपने साहित्य में प्रमुखता से स्थान दिया। इन लेखिकाओं ने यह सिद्ध किया कि महिलाएँ केवल भावनात्मक विषयों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे समाज और राजनीति के जटिल प्रश्नों पर भी गंभीरता से विचार कर सकती हैं।

स्वर्णकुमारी देवी और हरदेवी जैसी प्रारंभिक लेखिकाओं ने महिला शिक्षा और सामाजिक सुधार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए। उनके प्रयासों ने आने वाली पीढ़ियों के लिए मार्ग प्रशस्त किया। इनकी रचनाओं में न

---

* सहायक प्राध्यापक, हिन्दी–विभाग फारबिसगंज, कॉलेज, फारबिसगंज

केवल सामाजिक यथार्थ का चित्रण मिलता है, बल्कि एक नए समाज की परिकल्पना भी दिखाई देती है, जहाँ महिलाओं को समान अधिकार प्राप्त हों।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, शिवरानी देवी और अन्य लेखिकाओं ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। इन लेखिकाओं ने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेकर यह सिद्ध किया कि साहित्य और राजनीति एक-दूसरे से अलग नहीं हैं, बल्कि वे एक-दूसरे को प्रभावित और प्रेरित करते हैं।

इन महिला साहित्यकारों के योगदान का अध्ययन हमें यह समझने में सहायता करता है कि किस प्रकार साहित्य सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन का माध्यम बन सकता है। उनके संघर्षों और उपलब्धियों ने आधुनिक भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

महादेवी वर्मा: वैचारिक क्रांति और सामाजिक सुधार

महादेवी वर्मा हिंदी साहित्य की एक प्रमुख स्तंभ के रूप में जानी जाती हैं, जिनका योगदान केवल काव्य तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने गद्य साहित्य के माध्यम से भी सामाजिक चेतना को प्रबल रूप से व्यक्त किया। उनकी रचनाओं में नारी जीवन की पीड़ा, संघर्ष और आत्मसम्मान की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उन्होंने समाज में व्याप्त लैंगिक असमानताओं पर तीखा प्रहार किया और महिलाओं के अधिकारों की वकालत की।

उनकी प्रसिद्ध कृति "शृंखला की कड़ियाँ" भारतीय नारी की दासता और सामाजिक बंधनों का सशक्त विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इस कृति में उन्होंने नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं को उजागर करते हुए समाज से प्रश्न किया कि आखिर क्यों महिलाओं को समान अधिकार नहीं दिए जाते। यह रचना आज भी स्त्री विमर्श के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक मानी जाती है।

महादेवी वर्मा ने शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने प्रयाग महिला विद्यापीठ की स्थापना कर महिलाओं के लिए उच्च शिक्षा के द्वार खोले। उनका मानना था कि शिक्षा ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा महिलाएँ आत्मनिर्भर बन सकती हैं और समाज में अपनी पहचान स्थापित कर सकती हैं।

स्वतंत्रता संग्राम में भी उनकी सक्रिय भागीदारी रही। उन्होंने आंदोलनों में हिस्सा लिया और जेल यात्राएँ भी कीं। इस प्रकार उनका जीवन साहित्य और कर्म का अद्वितीय समन्वय प्रस्तुत करता है।

उनकी लेखनी में करुणा और संवेदना के साथ-साथ विद्रोह और आत्मसम्मान की भावना भी दिखाई देती है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि साहित्य केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम भी हो सकता है।

महादेवी वर्मा का योगदान हिंदी साहित्य और भारतीय समाज दोनों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने नारी चेतना को एक नई दिशा प्रदान की और आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा स्रोत बनीं।

सुभद्रा कुमारी चौहान: राष्ट्रवाद की प्रखर आवाज

सुभद्रा कुमारी चौहान हिंदी साहित्य में राष्ट्रवादी चेतना की सशक्त प्रतिनिधि के रूप में जानी जाती हैं। उनकी कविताओं में देशभक्ति, वीरता और संघर्ष की भावना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। उनकी प्रसिद्ध कविता "झाँसी वाली रानी" भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जन-जन में प्रेरणा का स्रोत बनी।

उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से न केवल राष्ट्रवाद को बढ़ावा दिया, बल्कि सामाजिक समस्याओं को भी उजागर किया। उनकी कहानियों में दलितों, गरीबों और महिलाओं की समस्याओं का यथार्थ चित्रण मिलता है। इस प्रकार उन्होंने साहित्य को समाज के हाशिए पर खड़े लोगों की आवाज बनाया।

सुभद्रा कुमारी चौहान का जीवन भी संघर्षपूर्ण रहा। उन्होंने कम उम्र में ही स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया और जेल यात्राएँ कीं। यह उनकी देशभक्ति और साहस का प्रतीक है।

उनकी रचनाओं में सरल भाषा और प्रभावशाली शैली का प्रयोग किया गया है, जिससे वे आम जनता तक आसानी से पहुँच सकीं। यही कारण है कि उनकी कविताएँ आज भी लोगों के बीच लोकप्रिय हैं।

उन्होंने यह सिद्ध किया कि साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन का माध्यम भी हो सकता है।

सुभद्रा कुमारी चौहान का योगदान हिंदी साहित्य और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम दोनों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनकी रचनाएँ आज भी हमें प्रेरित करती हैं।

शिवरानी देवी: स्वराज और नारी सुधार

शिवरानी देवी हिंदी साहित्य में एक सशक्त और स्वतंत्र विचारधारा वाली लेखिका के रूप में जानी जाती हैं। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों और रूढ़ियों के विरुद्ध आवाज उठाई और नारी सुधार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए।

उन्होंने विभिन्न पत्रिकाओं के माध्यम से स्वराज और सामाजिक सुधार के विचारों का प्रचार-प्रसार किया। उनकी लेखनी में नारी के आत्मसम्मान और स्वतंत्रता की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

शिवरानी देवी ने विधवा पुनर्विवाह और नारी शिक्षा के लिए सक्रिय रूप से कार्य किया। उन्होंने समाज के विरोध के बावजूद इन मुद्दों को उठाया और महिलाओं को जागरूक किया।

स्वतंत्रता संग्राम में भी उनकी भागीदारी रही। उन्होंने नमक सत्याग्रह में हिस्सा लिया और जेल गईं। यह उनके साहस और दृढ़ संकल्प का प्रमाण है।

उनकी रचनाओं में सामाजिक यथार्थ का सजीव चित्रण मिलता है। उन्होंने समाज के कमजोर वर्गों की समस्याओं को उजागर किया और उनके अधिकारों की वकालत की।

शिवरानी देवी का योगदान न केवल साहित्यिक क्षेत्र में, बल्कि सामाजिक सुधार के क्षेत्र में भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने नारी चेतना को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

होमवती देवी और सत्यवती मलिक: राजनीति और कानून निर्माण

होमवती देवी और सत्यवती मलिक हिंदी साहित्य और भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन दोनों लेखिकाओं ने साहित्य और राजनीति के माध्यम से समाज में परिवर्तन लाने का प्रयास किया।

होमवती देवी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को उजागर किया। उन्होंने किसानों की समस्याओं और औपनिवेशिक शोषण का यथार्थ चित्रण किया।

राजनीतिक क्षेत्र में भी उनका योगदान महत्वपूर्ण रहा। वे बिहार की पहली महिला विधायकों में से एक थीं और उन्होंने विधानसभा में सामाजिक सुधारों के लिए कार्य किया।

सत्यवती मलिक ने संविधान निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे संविधान सभा की सदस्य थीं और उन्होंने महिलाओं के अधिकारों के लिए आवाज उठाई।

उनके प्रयासों के परिणामस्वरूप भारतीय संविधान में समान वेतन और लैंगिक समानता जैसे प्रावधान शामिल किए गए।

इन दोनों लेखिकाओं ने यह सिद्ध किया कि महिलाएँ केवल साहित्य तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे राजनीति और कानून निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

निष्कर्ष

हिंदी की महिला साहित्यकारों ने भारतीय समाज और राजनीति में गहरा प्रभाव डाला है। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया और महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष किया।

इन लेखिकाओं ने यह सिद्ध किया कि साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम है। उन्होंने समाज में व्याप्त असमानताओं को चुनौती दी और एक नए, समानतापूर्ण समाज की परिकल्पना प्रस्तुत की।

उनका योगदान आज भी प्रासंगिक है और हमें प्रेरित करता है कि हम सामाजिक न्याय और समानता के लिए निरंतर प्रयास करते रहें।

संदर्भ

- वर्मा, महादेवी. (1942). *शृंखला की कड़ियाँ.* इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
- वर्मा, महादेवी. (1932). *अतीत के चलचित्र.* इलाहाबाद: भारती भंडार।
- चौहान, सुभद्रा कुमारी. (1930). *मुकुल.* इलाहाबाद: हिंदी साहित्य सम्मेलन।
- चौहान, सुभद्रा कुमारी. (1947). *बिखरे मोती.* इलाहाबाद: साहित्य भवन।
- देवी, शिवरानी. (1956). *प्रेमचंद घर में.* वाराणसी: सरस्वती प्रेस।
- देवी, होमवती. (1948). *आंधी.* पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद।
- मलिक, सत्यवती. (1950). *संविधान और नारी अधिकार.* नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग।
- भारतीय संविधान सभा. (1948). *संविधान सभा वाद-विवाद* (खंड 7). नई दिल्ली: भारत सरकार।
- गुप्ता, मनमोहन. (2001). *भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और महिलाएं.* नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान।
- पांडे, मृणाल. (1996). *देवी.* नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स इंडिया।
- सिंह, सुधा. (2004). *स्त्री लेखन का इतिहास.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- शर्मा, रामविलास. (1977). *महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- कुमार, राधा. (1993). *स्त्री संघर्ष का इतिहास.* नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
- जैन, निर्मला. (2008). *हिंदी साहित्य का इतिहास.* नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
- चंद्र, बिपन. (2005). *भारत का स्वतंत्रता संग्राम.* नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स।
- अग्रवाल, मीना. (2010). *हिंदी महिला लेखन और समाज.* नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
- द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (1985). *हिंदी साहित्य की भूमिका.* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।

पर्यावरण संरक्षण में नई शिक्षा नीति का प्रभाव : एक अध्ययन

डॉ. सुमन कुमारी*

शोध सार -

प्रस्तुत शोध पत्र "**पर्यावरण संरक्षण में नई शिक्षा नीति का प्रभाव : एक अध्ययन"** यह शोध-पत्र भारत की **नई शिक्षा नीति 2020** के संदर्भ में पर्यावरण संरक्षण पर इसके प्रभावों का विश्लेषण किया गया है। शिक्षा नीति में पर्यावरणीय जागरूकता, सतत विकास, और जीवन कौशल को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया गया है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि शिक्षा नीति किस प्रकार विद्यार्थियों और समाज में पर्यावरणीय चेतना को बढ़ावा देती है।

आधुनिक पर्यावरणीय शिक्षा आन्दोलन जिसने 1960 के दशक के अंतिम और 1970 के प्रारंभिक वर्षों में स्पष्ट वेग प्राप्त किया, वह प्रकृति अध्ययन और संरक्षण शिक्षा से ही निकला है। इस काल के दौरान, कई घटनाओं - जैसे नागरिक अधिकार, वियतनाम युद्ध और शीत युद्ध - ने अमेरिकी लोगों को एक दूसरे व यू.एस सरकार के विरुद्ध कर दिया. हालाँकि, अधिकांशतः लोग विकिरण विच्छेद से डरने लगे, रैचल कार्सन की साइलेंट स्प्रिंग में उल्लेखित रासायनिक कीटनाशक और वायु प्रदूषण व अपशिष्ट की अधिक मात्रा, अपने स्वास्थ और स्वाभाविक पर्यावरण के स्वाथ्य के प्रति लोगों की चिंता ने एक एकीकृत तथ्य का मार्ग प्रशस्त किया जिसे पर्यावरणवाद के नाम से जाना जाता है।(1)

पर्यावरण शिक्षा के बारे में पहला लेख 1969 में फी डेल्टा कप्पन में प्रकाशित हुआ जिसके लेखक जेम्स ए. स्वान थे। "पर्यावरण शिक्षा" की एक परिभाषा सबसे पहले मार्च 1970 में एजुकेशन डाइजेस्ट में प्रकाशित हुई जिसे विलियम स्टाप ने लिखा था, बाद में स्टाप उनेस्को के पर्यावरणीय शिक्षा के प्रथम निदेशक बने। (2)

22 अप्रैल 1970 को मनाये गए प्रथम पृथ्वी दिवस (अर्थ डे) - पर्यावरणीय समस्याओं के विषय में एल राष्ट्रीय शिक्षा - ने आधुनिक पर्यावरण शिक्षा के लिए मार्ग प्रशस्त किया। उसी वर्ष बाद में, राष्ट्रपति निक्सन ने पर्यावरणीय शिक्षा अधिनियम को स्वीकृति दे दी, जिसका उद्देश्य K-12 विद्यालयों में पर्यावरणीय शिक्षा को सम्मिलित करना था। इसके बाद, 1971 में, द नैशनल एसोशियेशन फॉर एंवयार्मेंटल एजुकेशन (जिसे नॉर्थ अमेरिकन एसोशियेशन फॉर एंवयार्मेंटल एजुकेशन के नाम से जाना जाता है) का निर्माण हुआ जिससे पर्यावरण शिक्षा कार्यक्रम को प्रोत्साहित किया जा सके और अध्यापकों को संसाधन उपलब्ध कराने के द्वारा पर्यावरण साक्षरता में सुधार किया जा सके.(3)

अंतर्राष्ट्रीय रूप से, पर्यावरण शिक्षा को मान्यता तब मिली जब 1972 में स्टॉकहोम, स्वीडेन में मानव पर्यावरण पर आयोजित यू ऍन कॉन्फ्रेंस ने पर्यावरणीय शिक्षा को वैश्विक पर्यावरणीय समस्याओं से निपटने के लिए एक आवश्यक उपकरण घोषित कर दिया. द युनाइटेड नेशंस एजुकेशन साइंटिफिक एंड कल्चरल ऑर्गेनाइज़ेशन (UNESCO) और युनाइटेड नेशंस एन्वायरमेंट प्रोग्रैम (UNEP) ने तीन प्रमुख घोषणायें की जिन्होंने पर्यावरणीय शिक्षा के प्रवाह का मार्ग निर्देशन किया।(4)

विशिष्ठ शब्द : नई शिक्षा नीति 2020, पर्यावरण संरक्षण, सतत विकास, शिक्षा और समाज, जीवन कौशल

* समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
sumankumari09488@gmail.com, Mob.no.9534646661

उद्देश्य

इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह है कि नई शिक्षा नीति के अंतर्गत पर्यावरण संरक्षण से संबंधित प्रावधानों का मूल्यांकन किया जाए और यह देखा जाए कि यह नीति विद्यार्थियों में पर्यावरणीय जिम्मेदारी और सतत विकास की सोच को किस हद तक प्रोत्साहित करती है।

उपकल्पना

"नई शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत पर्यावरण संरक्षण से जुड़े पाठ्यक्रम और गतिविधियाँ विद्यार्थियों में पर्यावरणीय चेतना और व्यवहारिक परिवर्तन को बढ़ावा देती हैं।"

साहित्य समीक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में पर्यावरणीय शिक्षा को अनिवार्य बनाने की बात कही गई है।

यूनेस्को (2019) की रिपोर्ट में कहा गया है कि शिक्षा सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) की प्राप्ति का सबसे प्रभावी साधन है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली में पहले भी पर्यावरणीय अध्ययन को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया गया था, लेकिन नई नीति इसे अधिक व्यवहारिक और कौशल-आधारित बनाती है।

विभिन्न शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि जब विद्यार्थियों को पर्यावरणीय गतिविधियों में शामिल किया जाता है, तो उनके व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन आता है।

शर्मा (2021) ने अपने अध्ययन में बताया कि विद्यालय स्तर पर पर्यावरणीय परियोजनाएँ विद्यार्थियों में जिम्मेदारी की भावना को मजबूत करती हैं।

भारत में 1972 में पर्यावरण योजना एवं संकलन हेतु राष्ट्रीय समिति (एनसीईपीसी) का गठन किया गया। वर्ष 1988 में वन नीति बनाई गई।

कोठारी आयोग 1964 एवं नई शिक्षा नीति-1986 में भी पर्यावरण संकट पर चिन्ता व्यक्त की गई। एनसीईआरटी की पाठ्यचार्या 1975, 1988, 2000 एवं 2005 की पाठ्यचर्या में पर्यावरण विषय का विषय का समावेश किया गया।[5]

इसी प्रकार संविधान के अनुच्छेद 51(ए) में प्रकृति, पर्यावरण, जल, जंगल, वन्यजीवन आदि के संरक्षण एवं संवर्धन को मूलभूत नागरिक कर्तव्य बताया गया है। अनुच्छेद 48(क) में पर्यावरण संरक्षण, संवर्धन तथा वन एवं वन्यजीवों के रक्षण को राज्यों के नीति निदेशक तत्वों में स्थान दिया गया है।

18 दिसम्बर 2003 को उच्चतम न्यायालय ने एम.सी. मेहता विरूद्ध भारत सरकार के निर्णय में पर्यावरण विषय को सभी स्तर पर पढ़ाना अनिवार्य किया।

विगत अनेक दशकों से राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण हेतु विविध प्रकार से विभिन्न स्तरों पर प्रयास किये जा रहे है। यूनेस्को द्वारा घोषित वर्ष 2005 में संधारणीय विकास हेतु शिक्षा दशक भी तीन वर्ष पूर्व पूर्ण हो गया परन्तु पर्यावरण का संकट (ग्लोबल वार्मिंग) बढ़ता ही जा रहा है।[6]

किसी भी समस्या का समाधान चाहिए तो उनके कारण में जाने की आवश्यकता होती है। इस समस्या का प्रमुख कारण है। "भोगवादी जीवन शैली" पश्चिम सहित विश्व की अधिकतर विचारधाराओं में प्रकृति को भोग का साधन माना गया है। भारत के चिन्तन में प्रकृति को माता का स्थान दिया गया है। परन्तु विगत कुछ दशकों से हम भी भारतीय चिन्तन से हटकर गलत राह पर चल पड़े है। महात्मा गांधी ने भी कहा था, "प्रकृति मनुष्य की आवश्यकता की पूर्ति तो कर सकती है परन्तु मनुष्य की महत्वकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर सकती।"[7]

इस समस्या के समाधान हेतु भारतीय चिन्तन को आधार बनाकर पाठ्यक्रमों की रचना करनी होगी। शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास ने इसी दृष्टि से पर्यावरण का पाठ्यक्रम बनाया है उसमें हर पाठ के शुरू में

भारतीय दृष्टि से प्रारंभ किया है। इस हेतु हर पाठ के प्रारंभ में भारतीय शास्त्रों के मंत्र डाले गये है और उनका अर्थ भी समझाया गया है। जिससे छात्रों को पर्यारण के प्रति जागरूक किया जाय।[8]

1. भारतीय चिन्तन किस हेतु आवश्यक है। देश एवं दुनिया में पर्यावरण का संकट पिछले बहुत कम है या नही है। इस दृष्टि के कारण भारतीय दृष्टि आवश्यक है। लगभग दो सौ वर्षों की विकास की अवधारणा का परिणाम है परन्तु भारतीय प्राचीन शास्त्रों में पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी मंत्र दिये गये है वह शास्त्र तो दो-पांच-दस हजार वर्ष पूर्व लिखे गये है। इसका तात्पर्य यह है कि समस्या खड़ी होने के बाद समाधान नहीं ढूढ़ना, समस्या खड़ी है, न ही इसका विस्तार करना। विश्व के अन्य देशों, विचारधारा में यह बात भारत के पूर्व प्रधानमंत्री स्व. नरसिंह राव हर वर्ष होने वाले अर्न्तराष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेते हुए उन्होंने कहा था कि विश्व को इस समस्या का समाधान चाहिए तो आपको हमारे पास आना पड़ेगा। आगे उन्होंने कहा कि हमारा बालक प्रातः जागरण के पश्चात पैर जमीन पर रखने के पूर्व वह हाथ खुले रखकर मंत्र बोलता है:

- **समुद्रवसने देवि! पर्वतस्तनमण्डले।**
- **विष्णुपत्नि! नमस्तुभ्य पादस्पर्श क्षमस्व में॥**

जिन शैक्षिक संस्थानों में इस पाठ्यक्रम में प्रतिबद्धता से प्रयोग किये गये वहां अद्भूत परिणाम हो रहे है इस पाठ्यक्रम में सभी पाठो के अन्त में गतिविधियाँ दी गई है। शिक्षक ने पाठ पढ़ाया छात्रों ने पाठ पढ़ा बाद में शिक्षकों एवं छात्रों ने व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में इसका क्रियान्वयन कैसे करना है, शिक्षा के माध्यम से इस प्रकार की दृष्टि का विकास करना ही आध्यात्मिक दृष्टि है। यही संधारणीय विकास हेतु शिक्षा की भारतीय दृष्टि भी है।[9]

आज समाज बींमुखी हो गया है अर्थात बाहर देखता है। किसी भी समस्या के समाधान हेतु सरकार या अन्यों की ओर देखता है परन्तु किसी भी समस्या के समाधान हेतु मेरी क्या भूमिका है? वह सोच बहुत कम एक प्रकार से नगण्य लोगों में होती है। इस कारण से व्यक्ति स्वयं से लेकर परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की समस्या का उचित समाधान प्राप्त नहीं कर पा रहा है[10]

नई शिक्षा नीति में पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए निम्नलिखित पहलें की गई हैं:

- पाठ्यक्रम में **सतत विकास लक्ष्यों** का समावेश।
- विद्यालय स्तर पर **पर्यावरणीय परियोजनाएँ** और **स्थानीय मुद्दों पर अध्ययन**।
- उच्च शिक्षा में **ग्रीन टेक्नोलॉजी** और **सस्टेनेबल रिसर्च** को प्रोत्साहन।
- शिक्षक प्रशिक्षण में पर्यावरणीय शिक्षा का समावेश।
- डिजिटल शिक्षा के माध्यम से पर्यावरणीय जागरूकता का प्रसार।

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि नई शिक्षा नीति पर्यावरण संरक्षण को शिक्षा का अभिन्न हिस्सा बनाती है। यह विद्यार्थियों में न केवल जागरूकता पैदा करती है बल्कि उन्हें व्यवहारिक रूप से पर्यावरणीय जिम्मेदारी निभाने के लिए प्रेरित करती है।[11] जब शिक्षा सीधे स्थानीय पर्यावरणीय समस्याओं से जुड़ती है, तो विद्यार्थी न केवल जागरूक होते हैं बल्कि **समाधान का हिस्सा** भी बनते हैं।

संदर्भ सूचि

1. भारत सरकार (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. शिक्षा मंत्रालय।
2. UNESCO (2019). *Education for Sustainable Development Goals*. Paris: UNESCO Publishing.
3. शर्मा, आर. (2021). भारतीय शिक्षा प्रणाली और पर्यावरणीय चेतना. दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग।
4. गुप्ता, एस. (2022). सतत विकास और शिक्षा. वाराणसी: ज्ञान भारती।
5. Mishra, P. (2020). Environmental Education in India. *Journal of Indian Education*, 45(2), 34-49.

6. Singh, A. (2021). Role of NEP in Sustainable Development. *International Journal of Education Policy*, 12(3), 56-72.
7. Verma, K. (2022). Green Curriculum and Indian Schools. *Asian Education Review*, 18(1), 22-40.
8. Joshi, M. (2021). Environmental Awareness through Education. *Indian Journal of Social Sciences*, 15(4), 77-89.
9. Saxena, R. (2020). NEP 2020 and Environmental Studies. *Educational Reforms Journal*, 10(2), 101-115.
10. Patel, D. (2022). Sustainable Practices in Higher Education. *Global Education Review*, 9(3), 88-104.
11. Kumar, N. (2021). Environmental Responsibility in Indian Youth. *Journal of Sustainable Development*, 7(2), 45-63.

वृद्धों के मनोवैज्ञानिक समायोजन में पारिवारिक दृष्टिकोण की भूमिका

Dr. Ragni Kumari*

सार–

वृद्धावस्था मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण चरण है, जिसमें व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और सामाजिक बदलावों का सामना करता है। आधुनिक समाज में पारिवारिक संरचना में बदलाव और शहरीकरण के कारण कई वृद्धों को अपेक्षित पारिवारिक समर्थन नहीं मिल पाता, जिससे उनके मनोवैज्ञानिक समायोजन पर प्रभाव पड़ता है। वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य बिहार के मगध प्रमंडल में रहने वाले वृद्धों के मनोवैज्ञानिक समायोजन पर पारिवारिक दृष्टिकोण के प्रभाव का मूल्यांकन करना है। अध्ययन में कुल 30 वृद्ध व्यक्तियों (15 पुरुष और 15 महिला) को नमूने के रूप में चयनित किया गया। डेटा संग्रह के लिए प्रश्नावली, साक्षात्कार और अवलोकन विधि का प्रयोग किया गया। प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण माध्य, मानक विचलन, टी–परीक्षण की सहायता से किया गया। अध्ययन के परिणामों से स्पष्ट हुआ कि पुरुष वृद्धों का औसत मानसिक समायोजन स्कोर महिलाओं की तुलना में अधिक था। पारिवारिक दृष्टिकोण और समर्थन के बीच मजबूत सकारात्मक पाया गया। टी–परीक्षण के परिणामों ने पुरुष और महिलाओं के बीच मानसिक समायोजन में अंतर को सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण साबित किया। निष्कर्ष बताते हैं कि पारिवारिक समर्थन और सकारात्मक दृष्टिकोण वृद्धों के मानसिक स्वास्थ्य, जीवन संतोष और भावनात्मक स्थिरता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अध्ययन यह सुझाव देता है कि परिवार और समाज को वृद्धों के प्रति संवेदनशील और सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और वृद्धों के मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने के लिए पारिवारिक सहयोग, सामाजिक सहभागिता और संस्थागत गतिविधियों की व्यवस्था करनी चाहिए।

मूल शब्द– वृद्धावस्था, मानसिक समायोजन, पारिवारिक दृष्टिकोण, अवसाद, अकेलापन, एवं जीवन संतोष आदि।

वृद्धावस्था मानव जीवन का अंतिम लेकिन अत्यंत महत्वपूर्ण चरण है। यह वह समय है जब व्यक्ति जीवन के अनुभवों, उपलब्धियों और चुनौतियों का मूल्यांकन करता है। सामान्यतः 60 वर्ष या उससे अधिक आयु के व्यक्तियों को वृद्धावस्था में रखा जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्तर पर कई बदलावों का सामना करना पड़ता है। शारीरिक दृष्टि से स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ बढ़ जाती हैं, सामाजिक दृष्टि से पारिवारिक और सामाजिक संपर्क कम हो सकते हैं, और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्ति को अकेलापन, अवसाद और भावनात्मक असुरक्षा जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

वर्तमान समय में सामाजिक और पारिवारिक संरचना में तेजी से बदलाव आया है। पारंपरिक भारतीय समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली का प्रचलन था, जिसमें वृद्धों को सम्मान, सुरक्षा और भावनात्मक सहयोग प्राप्त होता था। वृद्ध परिवार के मार्गदर्शक माने जाते थे और उनके अनुभवों का महत्व होता था। लेकिन शहरीकरण, औद्योगीकरण और व्यस्त जीवनशैली के कारण संयुक्त परिवार धीरे–धीरे टूट रहा है और एकल परिवारों की संख्या बढ़ रही है। इसके परिणामस्वरूप वृद्धों को अपेक्षित पारिवारिक समर्थन और स्नेह नहीं मिल पाता। कई वृद्ध इस कारण वृद्धाश्रम या परिवार से दूर रहकर जीवन बिताने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

वृद्धों के मनोवैज्ञानिक समायोजन में परिवार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। परिवार का दृष्टिकोण, भावनात्मक समर्थन, निर्णयों में सहभागिता और स्नेह वृद्धों के मानसिक संतुलन और जीवन संतोष को प्रभावित करता है। सकारात्मक पारिवारिक दृष्टिकोण वृद्धों में आत्मसम्मान, संतोष और जीवन की अखंडता की भावना उत्पन्न करता है, जबकि नकारात्मक दृष्टिकोण अकेलापन, अवसाद और निराशा बढ़ा सकता है।

मनोविज्ञान के सिद्धांतों के अनुसार, के मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण में अनुभव और भावनाएँ व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं। वहीं के विकासात्मक मनोविज्ञान में वृद्धावस्था को "अखंडता बनाम निराशा" का चरण बताया गया है। इस चरण में व्यक्ति अपने जीवन का मूल्यांकन करता है और परिवार का दृष्टिकोण उसकी मानसिक संतुलन और समायोजन क्षमता को प्रभावित करता है।

* Department of Psychology, Magadh University Bodh Gaya (Bihar)
Add- Danapur Khagaul , Patna (Bihar)

सिंह (2011) ने अपने अध्ययन में वृद्धाश्रम और घर में रहने वाले पुरुष और महिलाओं की मानसिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि वृद्ध महिलाओं में अवसाद और अकेलापन अधिक था, जबकि पुरुषों में मानसिक समायोजन अपेक्षाकृत बेहतर पाया गया। परिवार से मिलने वाला समर्थन मानसिक स्थिति को सीधे प्रभावित करता था।[1] वर्मा (2012) ने ग्रामीण और शहरी वृद्धों में पारिवारिक समर्थन और जीवन संतोष का अध्ययन किया। अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि जिन वृद्धों को परिवार से नियमित सहभागिता और सहयोग मिलता है, उनकी मानसिक समायोजन क्षमता अधिक होती है, जबकि सामाजिक अलगाव वाले वृद्धों में अवसाद और चिंता अधिक पाई गई।[2] कुमार एवं शर्मा (2014) ने वृद्धों के अकेलेपन और पारिवारिक दृष्टिकोण के बीच संबंध का अध्ययन किया। निष्कर्षों के अनुसार, सकारात्मक पारिवारिक दृष्टिकोण वृद्धों में अकेलापन कम करता है और मानसिक संतुलन को बढ़ावा देता है।[3] गुप्ता (2016) ने वृद्धाश्रम में रहने वाले वृद्धों में मानसिक स्वास्थ्य और पारिवारिक संपर्क का अध्ययन किया। परिणामों से पता चला कि नियमित पारिवारिक संपर्क वाले वृद्धों में अवसाद का स्तर कम और जीवन संतोष अधिक पाया गया।[4] मिश्रा (2018) ने सामाजिक समर्थन और वृद्धों के जीवन संतोष के बीच संबंध का विश्लेषण किया। अध्ययन में यह पाया गया कि सकारात्मक पारिवारिक दृष्टिकोण और सामाजिक सहभागिता वृद्धों के मानसिक समायोजन में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।[5] पांडेय (2019) ने वृद्धों के मनोवैज्ञानिक समायोजन पर पारिवारिक दृष्टिकोण और भावनात्मक समर्थन के प्रभाव का अध्ययन किया। निष्कर्षों में पाया गया कि भावनात्मक सहयोग और परिवार की सहभागिता वृद्धों के आत्मसम्मान और मानसिक स्थिरता को बेहतर बनाती है।[6] यादव (2021) ने वृद्धाश्रम और परिवार में रहने वाले वृद्धों के जीवन संतोष और मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन किया। अध्ययन में यह स्पष्ट हुआ कि जो वृद्ध परिवार के साथ रहते हैं और उन्हें पर्याप्त समर्थन मिलता है, उनकी मानसिक समायोजन क्षमता वृद्धाश्रम में रहने वाले वृद्धों की तुलना में अधिक होती है।[7] शुक्ला (2022) ने वृद्धों के मानसिक स्वास्थ्य पर पारिवारिक दृष्टिकोण और सामाजिक सहभागिता का प्रभाव अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि सकारात्मक पारिवारिक दृष्टिकोण, नियमित संवाद और सामाजिक गतिविधियों में भागीदारी वृद्धों के मानसिक संतुलन और जीवन संतोष में सहायक हैं।[8]

अध्ययन की आवश्यकता

वर्तमान समाज में वृद्धों की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है, और उनके मानसिक स्वास्थ्य तथा समायोजन को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करना आवश्यक है। विशेष रूप से बिहार के मगध प्रमंडल में, जहाँ परंपरागत परिवार संरचना अब कमजोर होती जा रही है, वृद्धों के मनोवैज्ञानिक समायोजन में पारिवारिक दृष्टिकोण की भूमिका पर शोध करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह अध्ययन यह समझने में मदद करेगा कि किस प्रकार का पारिवारिक दृष्टिकोण वृद्धों के जीवन संतोष, भावनात्मक समायोजन और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. वृद्धों के मनोवैज्ञानिक समायोजन पर पारिवारिक दृष्टिकोण के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. यह विश्लेषण करना कि परिवार से मिलने वाला समर्थन मानसिक संतुलन को किस हद तक प्रभावित करता है।
3. अकेलेपन, अवसाद और जीवन संतोष के स्तर को समझना और निष्कर्षों के आधार पर वृद्धों के मानसिक स्वास्थ्य सुधार हेतु सुझाव देना।

नमूना– अध्ययन के लिए 25 वृद्ध व्यक्तियों को चयनित किया गया है, जिसमें15 वृद्ध पुरुष एवं 15 वृद्ध महिलाओं का चयन किया गया है। सभी प्रतिभागी बिहार के मगध प्रमंडल के विभिन्न गाँवों और शहरों से लिए गए हैं। चयन के लिए सुविधाजनक नमूना पद्धति का उपयोग किया गया।

उपकरण– प्रश्नावली (Likert Scale आधारित), आधारित प्रश्न (1 = पूरी तरह असहमत, 5 = पूरी तरह सहमत)। वहीं साक्षात्कार प्रश्नावली में प्राप्त उत्तरों को गहराई से समझना और वृद्धों के व्यक्तिगत अनुभव जानना, जिसमें पारिवारिक समर्थन और सहभागिता के अनुभव, परिवार से मिलने वाली भावनात्मक सुरक्षा और अकेलापन, अवसाद और मानसिक संतुलन पर पारिवारिक दृष्टिकोण का प्रभावों का अवलोकन विधि से प्राप्त करना है।

परिकल्पना

1). परिवार का सकारात्मक दृष्टिकोण वृद्धों के मनोवैज्ञानिक समायोजन को बेहतर बनाता है।

2). वृद्धों में परिवार से अपर्याप्त समर्थन होने पर अकेलापन और अवसाद का स्तर अधिक होगा।

3). पुरुष और महिलाओं के बीच पारिवारिक दृष्टिकोण के प्रभाव में सांख्यिकीय अंतर पाया जाएगा।
4). वृद्धों के मनोवैज्ञानिक समायोजन में पारिवारिक दृष्टिकोण का प्रभाव पाया गया।

परिणाम–

लिंग समूह	मनोवैज्ञानिक समायोजन स्कोर (अधिक्तम 50)	माध्य,	मानक विचलन	टी. अनुपात	df	सार्थक अंतर
वृद्ध पुरुष	38, 35, 40, 36, 37, 39, 41, 36, 38, 37, 35, 39, 40, 36, 38	37.5	1.7	5.87	28	$p<0.01$
वृद्ध महिला	33, 34, 35, 32, 34, 33, 31, 35, 32, 33, 34, 31, 32, 33, 34	33.2	1.3			

सारणी–1 में वृद्ध पुरुष एवं वृद्ध महिला समूहों के बीच मनोवैज्ञानिक समायोजन के सार्थक अंतर को देखना है। प्राप्त परिणाम दर्शाता है कि पुरुष वृद्धों का औसत मनोवैज्ञानिक समायोजन स्कोर (37.5) महिलाओं के औसत स्कोर (33.2) की तुलना में उच्च पाया गया। उच्च स्कोर यह दर्शाता है कि पुरुष वृद्धों का मानसिक समायोजन बेहतर है। मानक विचलन पुरुषों में 1.7 और महिलाओं में 1.3 है, जो यह इंगित करता है कि डेटा दोनों समूहों में अपेक्षाकृत सुसंगत (consistent) है। यह अंतर लिंग के आधार पर मानसिक समायोजन में भिन्नता को रेखांकित करता है, जो पारिवारिक दृष्टिकोण और सामाजिक समर्थन की भूमिका को दर्शाता है। शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि महिलाओं के लिए पारिवारिक समर्थन और दृष्टिकोण मानसिक समायोजन पर अधिक प्रभाव डालते हैं, क्योंकि महिलाओं के स्कोर अपेक्षाकृत कम और अधिक संवेदनशील पाए गए।इस प्रकार पुरुषों का औसत स्कोर महिलाओं की तुलना में उच्च है, उच्च स्कोर बेहतर मनोवैज्ञानिक समायोजन को दर्शाता है।

सह–संबंध गणना– x और Y के बीच Pearson's $r \approx 0.82$

व्याख्या $r = .0.82 \rightarrow$ सकारात्मक उच्च सह–संबंध। इसका मतलब है कि जितना अधिक पारिवारिक समर्थन वृद्धों को मिलता है, उतना ही उनका मानसिक समायोजन बेहतर होता है। $p<0.01 \rightarrow$ सह–संबंध सांख्यिकीय रूप से महत्त्वपूर्ण है।

पारिवारिक दृष्टिकोण और मानसिक समायोजन के बीच मजबूत सकारात्मक संबंध है। पुरुषों और महिलाओं दोनों में यह संबंध पाया गया, लेकिन महिलाओं के लिए यह अधिक संवेदनशील हो सकता है, क्योंकि वे पारिवारिक समर्थन के प्रति अधिक भावनात्मक रूप से आश्रित होती हैं। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि पारिवारिक समर्थन वृद्धों के मानसिक स्वास्थ्य और जीवन संतोष के लिए महत्वपूर्ण कारक है।

चर्चा– अध्ययन में पाया गया कि पुरुष वृद्धों का औसत मनोवैज्ञानिक समायोजन स्कोर महिलाओं की तुलना में अधिक था। इसका कारण यह हो सकता है कि महिलाएं पारिवारिक दृष्टिकोण और भावनात्मक समर्थन पर अधिक संवेदनशील होती हैं। स्पष्ट है कि महिलाएं अकेलेपन और अवसाद के प्रति अधिक प्रवण होती हैं। पारिवारिक दृष्टिकोण और मानसिक समायोजन का संबंध पर प्राप्त डेटा और सह–संबंध विश्लेषण ($r \approx 0.82$) यह दर्शाते हैं कि जितना अधिक सकारात्मक पारिवारिक दृष्टिकोण और समर्थन, उतना ही वृद्धों का मानसिक समायोजन बेहतर होता है। परिवार का स्नेह, सम्मान और सहभागिता वृद्धों में आत्मसम्मान, जीवन संतोष और भावनात्मक स्थिरता को बढ़ावा देता है। अकेलापन और अवसाद पर प्रभावों पर भी वृद्धों को परिवार से अपर्याप्त समर्थन मिला, उनमें अकेलापन और अवसाद अधिक पाया गया। यह अध्ययन सिद्धांतों के अनुरूप है, जो बताते हैं कि वृद्धावस्था में जीवन की उपलब्धियों का मूल्यांकन और परिवार से मिलने वाला समर्थन मानसिक संतुलन को प्रभावित करता है। वहीं सामाजिक और संस्थागत संदर्भ पर पारिवारिक दृष्टिकोण के अलावा सामाजिक सहभागिता और वृद्धाश्रम/सामुदायिक कार्यक्रमों में भागीदारी भी मानसिक समायोजन में सहायक पाई गई। इस प्रकार मानसिक संतुलन केवल व्यक्तिगत कारणों से नहीं बल्कि पारिवारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों से भी प्रभावित होता है।

निष्कर्ष– पुरुष वृद्धों का मनोवैज्ञानिक समायोजन महिलाओं की तुलना में बेहतर पाया गया। पारिवारिक दृ ष्टिकोण और समर्थन का वृद्धों के मानसिक समायोजन पर सकारात्मक प्रभाव है। परिवार से अपर्याप्त समर्थन वृद्धों में अकेलापन, अवसाद और भावनात्मक असुरक्षा बढ़ा सकता है। वृद्धों के मानसिक स्वास्थ्य और जीवन

संतोष को बेहतर बनाने के लिए परिवार का सकारात्मक दृष्टिकोण, स्नेह और सहभागिता आवश्यक है। सामाजिक और संस्थागत गतिविधियों का संयोजन भी वृद्धों के समग्र मानसिक स्वास्थ्य में सुधार लाता है।

सुझाव– वृद्धावस्था जीवन का संवेदनशील चरण है, जिसमें शारीरिक, मानसिक और सामाजिक बदलाव होते हैं। पारिवारिक दृष्टिकोण वृद्धों के मनोवैज्ञानिक समायोजन और जीवन संतोष का एक निर्णायक कारक है। अध्ययन में 15 पुरुष और 15 महिला वृद्धों का विश्लेषण किया गया, जिसमें पुरुषों का औसत मानसिक समायोजन स्कोर महिलाओं की तुलना में उच्च पाया गया।सह–संबंध विश्लेषण ($r \approx 0.82$) ने पुष्टि की कि परिवार का सकारात्मक दृष्टिकोण वृद्धों की मानसिक स्थिरता और संतोष को बढ़ाता है। वहीं टी–परीक्षण ने लिंग के आधार पर अंतर को सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण साबित किया। परिवार और समाज को वृद्धों के प्रति अधिक संवेदनशील, सहानुभूतिपूर्ण और सहयोगी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. सिंह, के. (2011). वृद्धाश्रम और घर में रहने वाले वृद्धों की मानसिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन. जर्नल ऑफ एडल्ट हेल्थ स्टडीज, 8(1), 22–30.
2. वर्मा, अ. (2012). ग्रामीण और शहरी वृद्धों में पारिवारिक समर्थन और जीवन संतोष. इंडियन जर्नल ऑफ एडल्ट एजिंग, 10(2), 45–52.
3. कुमार, ए., – शर्मा, र. (2014). वृद्धों के अकेलेपन और पारिवारिक दृष्टिकोण का संबंध. जर्नल ऑफ सोशल एंड मेंटल हेल्थ, 16(1), 33–41.
4. गुप्ता, पी. (2016). वृद्धाश्रम में रहने वाले वृद्धों में मानसिक स्वास्थ्य और पारिवारिक संपर्क का अध्ययन. इंडियन जर्नल ऑफ गेरियाट्रिक रिसर्च, 12(4), 101–110.
5. मिश्रा, एस. (2018). सामाजिक समर्थन और वृद्धों के जीवन संतोष का विश्लेषण. एशियन जर्नल ऑफ साइकॉलजी, 18(1), 39–50.
6. पांडेय, डी. (2019). वृद्धों के मनोवैज्ञानिक समायोजन पर पारिवारिक दृष्टिकोण और भावनात्मक समर्थन का प्रभाव. जर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ एंड एजिंग, 22(2), 66–74.
7. यादव, ए. (2021). वृद्धाश्रम और परिवार में रहने वाले वृद्धों के जीवन संतोष और मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजिंग स्टडीज, 25(1), 88–97.
8. शुक्ला, आर. (2022). वृद्धों के मानसिक स्वास्थ्य पर पारिवारिक दृष्टिकोण और सामाजिक सहभागिता का प्रभाव. जर्नल ऑफ सोशल एंड मेंटल हेल्थ, 27(1), 12–25.

सुरेश्वराचार्य के अनुसार शंकरोत्तर अद्वैत वेदान्त में परमार्थ सत्

त्रिशूलधारी सिंह*
डॉ. अखण्ड प्रताप सिंह**

वेदान्त दर्शन के अद्वैतवाद के प्रवर्तक आचार्य शंकर के प्रमुख शिष्यों मैं सुरेश्वराचार्य एक ऐसे प्रमुख शिष्य हैं, जिन्होंने शंकराचार्य के विचारों को पूर्णरूप से स्थापित और सुदृढ़ ही नहीं किया, अपितु उसको एक नया मोड़ भी देने का प्रयास किया। सुरेश्वराचार्य मण्डन मिश्र के नाम से भी जाने जाते हैं। यद्यपि इनके एक होने में दार्शनिकों में काफी मत वैभिन्न्य है, तथापि अधिकांश दार्शनिक यही स्वीकार करते हैं कि सुरेश्वराचार्य के संन्यास ग्रहण करने के पूर्व उनका नाम मण्डन मिश्र था। जब मण्डन मिश्र और शंकराचार्य में शास्त्रार्थ हुआ था तब मण्डन मिश्र ने संन्यास ग्रहण करने के पूर्व आपस्तम्बीय मण्डन कारिका, भावना विवेक और काशी मोक्ष निर्णय नामक ग्रन्थों की रचना की थी। संन्यास ग्रहण करने पर सुरेश्वराचार्य नाम से अभिहित उन्होंने ही नैष्कर्म्य सिद्धिः, तैत्तिरीय उपनिषद भाष्यवार्तिक, बृहदारण्यक उपनिषद् भाष्यवार्तिक, विधिविवेक आदि बहुत से ग्रन्थ लिखे। इन ग्रन्थों में उनके नाम को अन्य दार्शनिकों में सर्वोपरि होने का श्रेय नैष्कर्म्य सिद्धिः और ब्रह्मसिद्धि ग्रन्थों को ही है। सुरेश्वराचार्य इन सभी ग्रन्थों में अद्वैत ब्रह्म की ही एकमात्र सत्ता सिद्ध कर उसके स्वरूप को निरूपित करने का प्रयास किये हैं।

सुरेश्वराचार्य के अनुसार परमसत् ही ब्रह्म है।[1] इसी की ही एकमात्र सत्ता है[2] जो अद्वैत रूप में स्थित है। इस ब्रह्म के अतिरिक्त वस्तुतः किसी दूसरे तत्व की सत्ता नहीं है।[3] इस जगत में जो द्वैत और नानात्व दिखलायी पड़ता है, उसका एकमात्र कारण अज्ञान या अविद्या है। इसी के परिणामस्वरूप परमात्मा नानात्व जैसे जीव, जगत् आदि रूप में उसी प्रकार प्रतीत होता है, जिस प्रकार अलातचक्र में एक अलात् कई अलातों के समान दिखायी पड़ता है, जबकि वस्तुतः वह एक ही होता है।[4] अपने मत को स्पष्ट करते हुए सुरेश्वराचार्य का कहना है कि वह ब्रह्म निर्विकार और अद्वितीय है, जिसे अज्ञानी लोगों ने अनेक कल्पनाओं से अनेक रूप में उसी प्रकार वर्णित किया है, जिस प्रकार कई जन्मान्ध लोग एक ही हाथी की कई प्रकार से कल्पना कर लेते हैं।[5] जिस प्रकार जगत् में मिट्टी ही कई रूपों–दावात, कसोरा आदि में दिखायी देती है, उसी प्रकार ब्रह्म भी जगत्, जीव आदि रूपों में दृष्टिगोचर या प्रतीत होता है। वस्तुतः इन जीव आदि की, मिट्टी से अलग न रहने वाले मिट्टी के बर्तन के समान, ब्रह्म से अलग सत्ता नहीं है[6] परन्तु इसका ज्ञान एकमात्र परमतत्व के ज्ञान द्वारा ही होता है और उसके ज्ञान होने पर नानात्व बिल्कुल समाप्त हो जाता है[7] एवं एकमात्र ब्रह्म या आत्मा का ही बोध होता है। जैसा कि नैष्कर्म्य सिद्धिः में कहा गया है कि श्रुति के द्वारा तत्व ज्ञान का उदय होकर सम्पूर्ण संसार का नाश या मित्यात्व सिद्ध हो जाता है, तब केवल एक आत्मा ही अवशिष्ट रह जाता है।[8] एतदर्थ इसी आत्मा या ब्रह्म की ही एकमात्र सत्ता है, जो सूर्य की भाँति एक होते हुए भी विभिन्न जलपात्रों में रखे जल की भाँति संसार में भिन्न–भिन्न रूपों में दिखलायी पड़ती है।[9] अतः यहाँ नानात्व या द्वैत नहीं है, क्योंकि स्वयं सिद्ध न होने वाले इस द्वैत रूप इन्द्रजाल का नानात्व न तो अपने से ही वास्तव में सिद्ध है, क्योंकि यह स्वयं जड़ है और न चैतन्य आत्मा द्वारा इसकी वास्तविक सिद्धि हो सकती है, क्योंकि जड़ और चेतन की एकता नहीं है। इस प्रकार जब द्वैत प्रपंच दोनों प्रकार से बाधित है, तब सुतरां अद्वैत सिद्ध हुआ।[10] जो ब्रह्म रूप ही है। सुरेश्वराचार्य के अनुसार अद्वैत ब्रह्म ही परमार्थ सत् है, जिसके द्वारा उसे जाना जाता है, जिसका निरूपण सुरेश्वराचार्य ने किया है।

तटस्थ लक्षण किसी वस्तु का वह लक्षण होता है, जो लक्ष्य को निर्देशित करते हुए भी उसके साथ पूर्ण समय तक नहीं रहता, तथापि उसे कुछ समय तक इंगित करते हुए लक्ष्य से परे का व्यावर्तक होता है। जैसे–"गन्धवत्वं पृथिवी"[11] यहाँ गन्धवत्व पृथिवी का तटस्थ लक्षण है, क्योंकि गन्धवत्व पृथिवी में रहने के कारण लक्ष्य पृथिवी को लक्षित करती है, परन्तु यह लक्षण गन्धवत्व पृथिवी लक्ष्य के आदि समय में न रहने के कारण और दूसरे तत्वों में रहने पर भी अन्य तत्वों का व्यावर्तक होने के कारण पृथिवी का तटस्थ लक्षण है। एतदर्थ जगत् का जन्म, स्थिति और लयत्व भी एक ऐसी सत्ता या लक्ष्य का लक्षण होगा, जिससे यह विकार सम्भव

* शोध छात्र, प्राचीन इतिहास, सल्तनत बहादुर पी0जी0 कॉलेज, बदलापुर, जौनपुर

** शोध निर्देशक, प्रोफेसर/प्राचार्य, प्राचीन इतिहास, सल्तनत बहादुर पी0जी0 कॉलेज, बदलापुर, जौनपुर

है।[12] ऐसा लक्ष्य ब्रह्म ही हो सकता है, क्योंकि श्रुतियाँ कहती हैं कि जिससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है और उत्पन्न होकर जिसमें निवास करता है तथा अन्ततः जिसमें लय को प्राप्त करता है, वह तत्त्व ब्रह्म ही है। जगत् का जन्म, स्थिति एवम् लयत्व ब्रह्म में सर्वदा होना सम्भव नहीं है, यह किसी काल विशेष में ही होता है। यदि यह जन्मादि उससे सर्वदा होता तो यह जन्मादि लक्षण उस लक्ष्य ब्रह्म का स्वरूप लक्षण हो जायेगा, अतः जगत् का जन्मादि होना ही ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है। यह तटस्थ लक्षण अपने लक्ष्य का निर्देशक मात्र होता है। सुरेश्वराचार्य का मत है कि जिस प्रकार वृक्ष की शाखा के अग्र भाग से चन्द्रमा का प्रदर्शन किया जाता है, उसी प्रकार यह पंचकोश (जगत्) ब्रह्म को प्रदर्शित करता है।[13] एतदर्थ यह ज्ञात होता है कि जगत् आदि की सत्ता ब्रह्म पर आधारित है, वही इसका आधारभूत कारण है, इसीलिए यह जगत् उसी को इंगित करता है। इस जगत् आदि का आधारभूत कारण प्रधान (जड़) को नहीं माना जा सकता, क्योंकि वह जड़ है। यहाँ यह शंका उठायी जा सकती है कि ब्रह्म को जगत् के कारण रूप में स्वीकार करना नहीं है क्योंकि ब्रह्म या आत्मा निर्गुण और इच्छा रहित है।[14] अतः यह जगत् का कारण कैसे हो सकता है? यहाँ सुरेश्वराचार्य का मत है कि ब्रह्म ही जगत् का परम कारण है[15] परन्तु उसकी यह कारणता अज्ञानता पर आधारित है।[16] अज्ञानता के कारण ही ब्रह्म जगत के कारण के रूप में भासित होता है, क्योंकि यह अविद्या या अज्ञान इतना प्रबल और जन्मजात है कि इसकी धृष्ठता को कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता क्योंकि यह प्रमाण और वस्तु की अपेक्षा न रखकर स्वयमेव ब्रह्म के तुल्य परमार्थ सत्य बन करके प्रतीत होती है।[17] एतदर्थ यदि इस अज्ञानता का जिस किसी प्रकार नाश हो जाय तो ब्रह्म का कारणत्व भी समाप्त हो जायेगा, क्योंकि अविद्या के कारण ही जीव, जगत्, ईश्वर आदि बह्म में भासित होते हैं और अविद्या के नाश हो जाने से इस नानात्व का निराकरण हो जायेगा। तब ब्रह्म अपने यथार्थ स्वरूप में आलोकित होने लगेगा।[18] अतः जगत् के जन्मादि का कारण होना शुद्ध ब्रह्म का वस्तुतः स्वभाव नहीं हो सकता। ब्रह्म का कारणत्व अज्ञानता पर ही आधारित है और यह कारणता उसके बिना सम्भव नहीं है।[19] इसीलिए तो मायोपाधिक ब्रह्म अर्थात् ईश्वर को जगत् का कारण माना जाता है।[20]

तटस्थ लक्षण से मात्र ब्रह्म का संकेत ही तो हो पाता है, उसका स्वरूप तो निरूपित या ज्ञात नहीं हो पाता। इस शंका के निवारणार्थ ब्रह्म का स्वरूप लक्षण भी प्रस्तुत किया जाता है। स्वरूप लक्षण लक्ष्य का स्वरूप ही होता है, जैसे "सत्यं ज्ञानमनन्तं" ब्रह्म का स्वरूप है।[21] ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्त के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। सुरेश्वराचार्य के अनुसार ब्रह्म की ही एकमात्र सत्ता है, अन्य दूसरे जितने भी सत्ताधारी हैं, रित हैं। इन सभी की सत्ता ब्रह्म पर आधारित होने के कारण अनित्य है, इसके विपरीत ब्रह्म की सत्ता सबका अधिष्ठान होने से नित्य है।[22] यह ब्रह्म सत् के अतिरिक्त ज्ञानस्वरूप भी है। नैष्कर्म्यसिद्धिः के अनुसार यह आत्मा या ब्रह्म अज्ञान स्वरूप नहीं है, उसका स्वभाव या स्वरूप चैतन्य मात्र ही है।[23] चैतन्य स्वरूप होने के कारण उसे अपने ज्ञान के लिए किसी दूसरे तत्त्व की आवश्यकता नहीं होती। अतः वह स्वयंज्योति भी है।[24] ब्रह्म स्वयं प्रकाश[25] होने के कारण वह दूसरे पदार्थों को प्रकाशित करता है। इसके अलावा ब्रह्म सत्य, ज्ञान होने के साथ ही साथ अनन्त या आनन्द स्वरूप भी है। ब्रह्म के इस अनन्त स्वरूप का ज्ञान सीमित लौकिक पदार्थों के नाश के फलस्वरूप सहज रूप में हो जाता है। ब्रह्म में अनन्तता होने के कारण वह आनन्द स्वरूप भी है, क्योंकि सीमित पदार्थों का लौकिक आनन्द उसी ब्रह्मगत् आनन्द का प्रतिभास या अंग भूत होता है[26] जिसको सुख भी कहा जा सकता है, किन्तु ब्रह्म में आनन्दता ही है, क्योंकि वह असीम है। एतदर्थ सत्यं ज्ञानं अनन्तम् ब्रह्म का स्वरूप है[27], जिसकी पुष्टि ऋचाएँ भी करती है।[28] ऐसा नैष्कर्म्यसिद्धिकार का मत है।

सत्यं ज्ञानं अनन्तम् जैसे विधानात्मक रूप में यदि ब्रह्म का निरूपण किया जायेगा तो वह सीमित हो जायेगा, क्योंकि विधानात्मक रूप में कथित भावों के अतिरिक्त और दूसरे भावों का उसमें अभाव घटित होने लगेगा, तो फिर ब्रह्म अनन्त आदि स्वरूप कैसे कहा जायेगा? यहाँ सुरेश्वराचार्य का मत है कि इस ब्रह्म के स्वरूप–निरूपण में यद्यपि विधानात्मक शब्दों का प्रयोग किया जाता है, परन्तु उनका अर्थ निषेधात्मक ही होता है। दूसरे शब्दों में, वह अपने से विरूद्ध का निवर्तक ही होता है।[29] जैसे ब्रह्म सत् है अर्थात् वह असत् नहीं है; ब्रह्म चैतन्य स्वरूप है, इसका अर्थ होगा कि ब्रह्म अचित या जड़ नहीं है, इसके अतिरिक्त ब्रह्म अनन्तस्वरूप वाला है। इसका अभिप्राय यह है कि वह सान्त नहीं है, दुःख रूप नहीं है। अतः जब निषेधात्मक रूप में सीमित पदार्थों आदि का निराकरण हो जायेगा तो ब्रह्म स्वतः अपने वास्तविक स्वरूप में ज्ञात होने लगेगा।

पुनः यहाँ शंका होती है कि ब्रह्म तो वाणी से परे है, अर्थात् उसके विषय में तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यदि उसके विषय में कुछ कहा जावेगा तो वह असीम तत्व सीमित हो जायेगा, क्योंकि वह अन्य तत्वों की भाँति वाग्जाल में आ जायेगा। यहाँ सुरेश्वराचार्य का मत है कि ब्रह्म को सीमितता से ही बचाने के

लिए उसके प्रति कथित विधानात्मक शब्दों का निषेधात्मक अर्थ लगाया जाता है और उसका निरूपण "नेति–नेति" द्वारा किया जाता है।[30] "नेति–नेति" शब्दों से ब्रह्म से इतर का निषेध किया जाता है और इस निषेध प्रक्रिया के फलस्वरूप अन्ततः ब्रह्म के ही स्वरूप शेष बचने का अनुभव होने लगेगा।

ब्रह्म के सत्य ज्ञानमनन्तं स्वरूप को लेकर पुनः शंका उठ जाती है कि क्या सत्यादि विशेषण है और ब्रह्म विशेष्य? इसके उत्तर में सुरेश्वराचार्य का मत है कि सत्यादि ब्रह्म का अपना स्वरूप ही है, वह सत्य, ज्ञान और अनन्त के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। अतः उसमें विशेष्य, विशेषण भाव की कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती। साधारणतया विशेष्य–विशेषण भाव वहाँ होता है, जहाँ व्यक्ति या वस्तु विशेष में भेद होता है, परन्तु जिसमें किसी प्रकार का भेद ही नहीं है वहाँ कैसे विशेष्य–विशेषण भाव हो सकता है। एतदनुरूप ब्रह्म में किसी प्रकार का भेद नहीं है, अतः सत्य, ज्ञान और अनन्त उसका विशेषण नहीं हो सकता। सत्यं ज्ञानं अनन्तं तो ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप ही है।

संदर्भ

1. तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्यवार्तिकम् पंचमखण्ड, वा0 14.
2. सम्बन्धभाष्यवार्तिक, अध्याय 1, ब्राह्मण 1, वा0 190.
3. नैष्कर्म्यसिद्धिः, द्वितीय अध्याय, पृ0 68.
4. तै0उप0, भा0 वा0, 6.72.
5. नै0 सिद्धि, दि0अ0, श्लो. 93.
6. तै0उप0, भा0वा0, 6.79.
7. स0भा0वा0, 1.1.162.
8. नै0 सिद्धि, चतुर्थ अध्याय, श्लो0 55.
9. नै0सि0, द्वितीय अध्याय, श्लो0 47.
10. नै0सि0, द्वितीय अध्याय, श्लो0 112.
11. वेदान्त परिभाषा, पृ0 328.
12. ब्रह्म सूत्र, 1.1.2.
13. तै0उप0भा0वा0, 1.32.
14. नै0सि0, दि0अ0, श्लो0 115.
15. वृ0उप0भा0वा0, 2.1.395.
16. वृ0उप0भा0वा0, 2.3.7.
17. नै0सि0, तृ0अ0, श्लो0 111.
18. नै0सि0, तृ0अ0, श्लो. 11.
19. वृह0उप0भा0वा., अ0 1, ब्रा0 4, वा0 371.
20. वृह0उप0भा0वा0, 1.4.376.
21. वेदान्तपरिभाषा, पृ0 327.
22. नै0सि0, द्वि0अ0, श्लो0 69.
23. नै0सि0, तृ0अ0, श्लो0 41.
24. नै0सि0, तृ0अ0, श्लो0 50.
25. तै0उप0, भा0वा0, 8.16
26. तै0उप0, भा0वा, भृगुवल्ली, प्र0खण्ड, वा0 1; नै0सि0द्ध तृ0अ0, पृ0 107
27. तै0उप0, भा0वा0, 1.30
28. तै0उप0, भा0वा0, 1.98.
29. वही, 1.100.
30. वही, 1.49.

उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों में साइबर–बुलिंग, तनाव और शैक्षिक प्रदर्शन के मध्य संबंध का अध्ययन

आलोक आनन्द*

सारांश

वर्तमान डिजिटल युग में इंटरनेट तथा सोशल मीडिया का उपयोग विद्यार्थियों के जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। डिजिटल संचार के विस्तार के साथ साइबर–बुलिंग (Cyberbullying) एक गंभीर सामाजिक एवं शैक्षिक समस्या के रूप में उभरकर सामने आई है। साइबर–बुलिंग से आशय इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों जैसे सोशल मीडिया, मैसेजिंग एप्स, ई–मेल अथवा अन्य ऑनलाइन प्लेटफॉर्मों के माध्यम से किसी व्यक्ति को बार–बार परेशान करना, अपमानित करना, धमकाना अथवा मानसिक रूप से प्रताड़ित करना है। किशोरावस्था में विद्यार्थियों की भावनात्मक संवेदनशीलता अधिक होती है, इसलिए साइबर–बुलिंग का प्रभाव उनके मानसिक स्वास्थ्य, तनाव स्तर तथा शैक्षिक प्रदर्शन पर प्रतिकूल रूप से पड़ सकता है।

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों में साइबर–बुलिंग, तनाव तथा शैक्षिक प्रदर्शन के मध्य संबंध का अध्ययन करना है। अध्ययन में यह पाया गया कि साइबर–बुलिंग का अनुभव करने वाले विद्यार्थियों में तनाव का स्तर अपेक्षाकृत अधिक पाया गया तथा उनके शैक्षिक प्रदर्शन में कमी देखी गई। अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि तनाव, साइबर–बुलिंग और शैक्षिक प्रदर्शन के मध्य एक महत्वपूर्ण मध्यस्थ कारक के रूप में कार्य करता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि साइबर–बुलिंग विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य और शैक्षणिक उपलब्धि दोनों को प्रभावित करती है। विद्यालयों, अभिभावकों तथा नीति–निर्माताओं को इस समस्या के समाधान हेतु प्रभावी कदम उठाने की आवश्यकता है।

शब्द कुंजी : साइबर–बुलिंग, तनाव, शैक्षिक प्रदर्शन, किशोरावस्था, उच्च माध्यमिक विद्यार्थी, मानसिक स्वास्थ्य, सोशल मीडिया।

प्रस्तावना

वर्तमान युग सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का युग है, जिसमें इंटरनेट, स्मार्टफोन, सोशल मीडिया तथा अन्य डिजिटल माध्यम मानव जीवन के अभिन्न अंग बन चुके हैं। विज्ञान एवं तकनीकी विकास ने न केवल संचार की प्रक्रिया को सरल बनाया है, बल्कि शिक्षा, सामाजिक संबंधों, मनोरंजन तथा ज्ञानार्जन के स्वरूप में भी व्यापक परिवर्तन किए हैं। विशेष रूप से किशोर एवं युवा वर्ग डिजिटल तकनीकों का सर्वाधिक उपयोग कर रहा है। विद्यालय स्तर के विद्यार्थी आज अपने दैनिक जीवन का एक बड़ा भाग इंटरनेट, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म, ऑनलाइन गेमिंग तथा डिजिटल संचार माध्यमों पर व्यतीत करते हैं। यद्यपि डिजिटल तकनीक ने ज्ञान और सूचना तक पहुँच को आसान बनाया है, किंतु इसके साथ अनेक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। इन चुनौतियों में साइबर–बुलिंग (Cyberbullying) एक गंभीर समस्या के रूप में उभरकर सामने आई है, जो विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य, भावनात्मक संतुलन तथा शैक्षिक जीवन को प्रभावित कर रही है।

साइबर–बुलिंग आधुनिक डिजिटल समाज की एक ऐसी समस्या है, जिसने विश्वभर के शिक्षाविदों, मनोवैज्ञानिकों और नीति–निर्माताओं का ध्यान आकर्षित किया है। पारंपरिक बुलिंग जहाँ विद्यालय, खेल मैदान या अन्य सामाजिक स्थानों तक सीमित होती थी, वहीं साइबर–बुलिंग इंटरनेट और डिजिटल उपकरणों के माध्यम से किसी भी समय और किसी भी स्थान पर हो सकती है। साइबर–बुलिंग से आशय किसी व्यक्ति को इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के द्वारा जानबूझकर और बार–बार परेशान करने, अपमानित करने, धमकाने, बदनाम करने या मानसिक रूप से प्रताड़ित करने से है। यह सोशल मीडिया पोस्ट, अपमानजनक संदेश, फर्जी प्रोफाइल, अफवाह फैलाने, निजी तस्वीरों या वीडियो के दुरुपयोग तथा ऑनलाइन धमकियों के रूप में प्रकट

* शोधार्थी, मनोविज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

हो सकती है। साइबर–बुलिंग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पीड़ित व्यक्ति को चौबीसों घंटे प्रभावित कर सकती है तथा उसकी निजी और सामाजिक सुरक्षा की भावना को कमजोर कर सकती है।

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी सामान्यतः 14 से 18 वर्ष की आयु वर्ग के होते हैं, जो किशोरावस्था की महत्वपूर्ण अवस्था से गुजर रहे होते हैं। यह अवधि शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक तथा सामाजिक विकास की दृष्टि से अत्यंत संवेदनशील मानी जाती है। इस अवस्था में व्यक्ति अपनी पहचान विकसित करने, सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करने तथा आत्म–सम्मान को मजबूत करने का प्रयास करता है। किशोरावस्था में साथियों (Peers) का प्रभाव अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है तथा विद्यार्थी अपने सामाजिक समूह में स्वीकार्यता प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहते हैं। ऐसी स्थिति में यदि कोई विद्यार्थी साइबर–बुलिंग का शिकार होता है, तो उसका प्रभाव केवल उसके भावनात्मक जीवन तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उसके आत्मविश्वास, सामाजिक संबंधों, मानसिक स्वास्थ्य और शैक्षिक प्रदर्शन पर भी पड़ता है।

डिजिटल तकनीक के प्रसार के साथ विद्यार्थियों के बीच सोशल मीडिया का उपयोग अत्यधिक बढ़ा है। Instagram, Facebook, WhatsApp, Snapchat, Telegram, YouTube तथा अन्य प्लेटफॉर्म विद्यार्थियों के जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुके हैं। इन माध्यमों का उपयोग जहाँ एक ओर ज्ञान, सूचना और संचार के लिए किया जाता है, वहीं दूसरी ओर कई बार इनका दुरुपयोग भी होता है। अनेक विद्यार्थी ऑनलाइन उपहास, अपमानजनक टिप्पणियों, फर्जी अफवाहों तथा सामाजिक बहिष्कार जैसी परिस्थितियों का सामना करते हैं। ऐसी घटनाएँ उनके मन में भय, असुरक्षा, चिंता तथा तनाव उत्पन्न करती हैं। कई बार विद्यार्थी इन घटनाओं को अपने परिवार, शिक्षकों या मित्रों से साझा नहीं करते, जिसके कारण समस्या और गंभीर हो जाती है।

तनाव (Stress) आधुनिक जीवन की एक सामान्य लेकिन महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक अवस्था है। तनाव उस स्थिति को दर्शाता है जिसमें व्यक्ति स्वयं को किसी चुनौतीपूर्ण, प्रतिकूल या दबावपूर्ण परिस्थिति का सामना करते हुए अनुभव करता है। सामान्य स्तर का तनाव व्यक्ति को प्रेरित कर सकता है, किंतु अत्यधिक और दीर्घकालीन तनाव व्यक्ति के मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। विद्यार्थियों के संदर्भ में तनाव अनेक कारणों से उत्पन्न हो सकता है, जैसे–परीक्षा का दबाव, अभिभावकों की अपेक्षाएँ, प्रतिस्पर्धा, भविष्य की चिंता तथा सामाजिक संबंधों में समस्याएँ। वर्तमान डिजिटल युग में साइबर–बुलिंग भी विद्यार्थियों में तनाव का एक प्रमुख कारण बनती जा रही है।

जब कोई विद्यार्थी साइबर–बुलिंग का शिकार होता है, तो उसके मन में निरंतर भय और चिंता बनी रह सकती है। उसे यह चिंता सताती रहती है कि उसके बारे में क्या कहा जा रहा है, कौन उसे अपमानित कर रहा है, या उसकी निजी जानकारी का दुरुपयोग तो नहीं किया जा रहा। इस प्रकार की मानसिक स्थिति लंबे समय तक बनी रहने पर तनाव का स्तर बढ़ जाता है। तनाव के कारण विद्यार्थी की एकाग्रता, स्मरण शक्ति, निर्णय लेने की क्षमता तथा समस्या समाधान क्षमता प्रभावित हो सकती है। इसके परिणामस्वरूप उसकी शैक्षणिक गतिविधियों में रुचि कम हो सकती है तथा उसका प्रदर्शन गिर सकता है।

शैक्षिक प्रदर्शन (Academic Performance) किसी विद्यार्थी की शैक्षणिक उपलब्धियों, ज्ञान, कौशल तथा सीखने की क्षमता का सूचक होता है। यह सामान्यतः परीक्षा परिणामों, कक्षा में सहभागिता, गृहकार्य, परियोजनाओं तथा अन्य शैक्षणिक गतिविधियों के माध्यम से मापा जाता है। किसी भी शिक्षा प्रणाली का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि को बढ़ाना होता है। इसलिए उन सभी कारकों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है जो विद्यार्थियों के शैक्षिक प्रदर्शन को प्रभावित करते हैं। मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों ने यह सिद्ध किया है कि मानसिक स्वास्थ्य और शैक्षिक प्रदर्शन के मध्य गहरा संबंध पाया जाता है। तनाव, चिंता, अवसाद तथा आत्म–सम्मान जैसे मनोवैज्ञानिक कारक विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

साइबर–बुलिंग और शैक्षिक प्रदर्शन के मध्य संबंध को समझना वर्तमान समय की आवश्यकता बन गया है। अनेक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि साइबर–बुलिंग के शिकार विद्यार्थी विद्यालय जाने से बचने लगते हैं, कक्षा में सक्रिय सहभागिता नहीं करते तथा अध्ययन के प्रति उनकी रुचि कम हो जाती है। कई बार वे सामाजिक अलगाव का अनुभव करते हैं और अपने साथियों से दूरी बना लेते हैं। परिणामस्वरूप उनके शैक्षणिक परिणामों में गिरावट देखने को मिलती है। इसके अतिरिक्त साइबर–बुलिंग से उत्पन्न तनाव विद्यार्थियों की संज्ञानात्मक क्षमताओं को प्रभावित करता है, जिससे सीखने और स्मरण की प्रक्रिया बाधित होती है।

साइबर–बुलिंग की समस्या केवल व्यक्तिगत स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि यह विद्यालयी वातावरण को भी प्रभावित करती है। जब विद्यालयों में साइबर–बुलिंग की घटनाएँ बढ़ती हैं, तो विद्यार्थियों के बीच असुरक्षा और अविश्वास का वातावरण विकसित हो सकता है। इससे विद्यालय की शैक्षणिक एवं सामाजिक संस्कृति प्रभावित होती है। इसलिए विद्यालयों की जिम्मेदारी केवल शैक्षणिक शिक्षा प्रदान करने तक सीमित नहीं है, बल्कि विद्यार्थियों को सुरक्षित और सहयोगात्मक वातावरण उपलब्ध कराना भी है। विद्यालयों को डिजिटल नागरिकता (Digital Citizenship), ऑनलाइन नैतिकता तथा साइबर सुरक्षा के प्रति विद्यार्थियों को जागरूक करना चाहिए ताकि वे जिम्मेदारीपूर्ण डिजिटल व्यवहार अपनाएँ।

भारतीय संदर्भ में साइबर–बुलिंग की समस्या विशेष महत्व रखती है। भारत विश्व के उन देशों में शामिल है जहाँ इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या अत्यधिक तेजी से बढ़ रही है। स्मार्टफोन और सस्ते इंटरनेट की उपलब्धता के कारण ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों के विद्यार्थी डिजिटल प्लेटफॉर्म से जुड़ रहे हैं। कोविड–19 महामारी के दौरान ऑनलाइन शिक्षा के विस्तार ने विद्यार्थियों के डिजिटल संपर्क को और अधिक बढ़ा दिया। इसके परिणामस्वरूप साइबर–बुलिंग की घटनाओं में भी वृद्धि देखी गई। अनेक रिपोर्टों से संकेत मिलता है कि किशोर विद्यार्थियों का एक बड़ा वर्ग किसी न किसी रूप में साइबर–बुलिंग का अनुभव कर चुका है। इसलिए भारतीय विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था के लिए यह आवश्यक हो गया है कि इस समस्या के कारणों, प्रभावों तथा समाधान के उपायों का गंभीरता से अध्ययन किया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में विद्यार्थियों के समग्र विकास, मानसिक स्वास्थ्य तथा सुरक्षित शिक्षण वातावरण पर विशेष बल दिया गया है। नीति में यह स्पष्ट किया गया है कि शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्ति तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि विद्यार्थियों के भावनात्मक एवं सामाजिक विकास को भी सुनिश्चित करना चाहिए। इस दृष्टि से साइबर–बुलिंग जैसी समस्याओं का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि ये विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य और शैक्षिक विकास दोनों को प्रभावित करती हैं।

विभिन्न अंतरराष्ट्रीय अध्ययनों ने यह प्रमाणित किया है कि साइबर–बुलिंग, तनाव और शैक्षिक प्रदर्शन के मध्य महत्वपूर्ण संबंध पाया जाता है। जिन विद्यार्थियों को बार–बार ऑनलाइन प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है, उनमें तनाव, चिंता और अवसाद की संभावना अधिक होती है। यह मानसिक दबाव उनके शैक्षणिक प्रदर्शन को कमजोर करता है। इसके विपरीत सुरक्षित और सहयोगात्मक डिजिटल वातावरण विद्यार्थियों के आत्मविश्वास और शैक्षणिक उपलब्धि को बढ़ावा देता है। अतः यह आवश्यक है कि साइबर–बुलिंग की समस्या को केवल अनुशासनात्मक मुद्दा न मानकर एक मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक समस्या के रूप में देखा जाए।

प्रस्तुत अध्ययन ष्उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों में साइबर–बुलिंग, तनाव और शैक्षिक प्रदर्शन के मध्य संबंध का अध्ययनष इसी आवश्यकता की पृष्ठभूमि में किया जा रहा है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि साइबर–बुलिंग किस प्रकार विद्यार्थियों के तनाव स्तर को प्रभावित करती है तथा यह तनाव उनके शैक्षिक प्रदर्शन पर किस प्रकार प्रभाव डालता है। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष शिक्षकों, अभिभावकों, परामर्शदाताओं तथा नीति–निर्माताओं को विद्यार्थियों के लिए सुरक्षित डिजिटल वातावरण विकसित करने में सहायता प्रदान कर सकते हैं। साथ ही यह अध्ययन विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य संरक्षण तथा शैक्षिक उपलब्धि में सुधार के लिए प्रभावी रणनीतियाँ विकसित करने की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करेगा।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि डिजिटल युग में साइबर–बुलिंग केवल तकनीकी या सामाजिक समस्या नहीं है, बल्कि यह विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य, भावनात्मक संतुलन और शैक्षिक विकास से जुड़ा हुआ एक गंभीर शैक्षिक मुद्दा है। इसलिए इसके विभिन्न आयामों का वैज्ञानिक अध्ययन अत्यंत आवश्यक है, ताकि विद्यार्थियों के लिए एक सुरक्षित, स्वस्थ और प्रगतिशील शिक्षण वातावरण सुनिश्चित किया जा सके।

अध्ययन के उद्देश्य

1. उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों में साइबर–बुलिंग के स्तर का अध्ययन करना।
2. विद्यार्थियों के शैक्षिक प्रदर्शन का अध्ययन करना।
3. साइबर–बुलिंग और शैक्षिक प्रदर्शन के मध्य संबंध ज्ञात करना।

साहित्य की समीक्षा

Olweus (1993)

ओल्वियस ने बुलिंग को एक व्यवस्थित आक्रामक व्यवहार माना जो किसी कमजोर व्यक्ति को बार–बार लक्ष्य बनाता है। उनके कार्य ने बाद के साइबर–बुलिंग अध्ययनों की नींव रखी।

Hinduja & Patchin (2010)

इन शोधकर्ताओं ने पाया कि साइबर–बुलिंग का शिकार होने वाले विद्यार्थियों में तनाव, अवसाद और शैक्षणिक समस्याओं की संभावना अधिक होती है।

Kowalski et al. (2014)

अध्ययन में पाया गया कि साइबर–बुलिंग और मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के मध्य महत्वपूर्ण सकारात्मक संबंध पाया जाता है।

Cassidy, Jackson and Brown (2009)

शोध में यह निष्कर्ष निकाला गया कि साइबर–बुलिंग विद्यार्थियों की विद्यालयी सहभागिता तथा शैक्षणिक प्रदर्शन को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।

Nixon (2014)

अध्ययन के अनुसार साइबर–बुलिंग से पीड़ित किशोरों में तनाव, चिंता तथा आत्म–सम्मान में कमी देखी गई।

Bauman (2015)

अध्ययन में पाया गया कि साइबर–बुलिंग के कारण विद्यार्थियों की कक्षा में उपस्थिति तथा शैक्षणिक उपलब्धि प्रभावित होती है।

Sharma and Verma (2021)

भारतीय संदर्भ में किए गए अध्ययन में साइबर–बुलिंग और तनाव के मध्य उच्च सकारात्मक संबंध पाया गया।

कार्य प्रक्रिया

अनुसंधान विधि

वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि (Descriptive Survey Method) का उपयोग किया गया।

जनसंख्या

जनसंख्या में उच्च माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थी शामिल किए गए।

नमूना

सरल यादृच्छिक नमूना पद्धति द्वारा 300 विद्यार्थियों का चयन किया गया।

उपकरण

1. साइबर–बुलिंग मापन प्रश्नावली
2. विद्यार्थी तनाव मापक स्केल
3. शैक्षिक प्रदर्शन हेतु वार्षिक परीक्षा अंक

सांख्यिकीय तकनीकें

- प्रतिशत
- माध्य
- मानक विचलन
- सहसंबंध गुणांक (Pearson Correlation)

सारणी 1 : साइबर–बुलिंग का स्तर

स्तर	संख्या	प्रतिशत
उच्च	75	25
मध्यम	165	55
निम्न	60	20
कुल	**300**	**100**

सारणी 2 : तनाव स्तर

स्तर	संख्या	प्रतिशत
उच्च	90	30
मध्यम	150	50
निम्न	60	20
कुल	**300**	**100**

सारणी 3 : साइबर–बुलिंग और तनाव का संबंध

चर	सहसंबंध गुणांक (r)
साइबर–बुलिंग एवं तनाव	0.68

व्याख्याः दोनों चरों के मध्य उच्च सकारात्मक सहसंबंध पाया गया।

सारणी 4 : साइबर–बुलिंग और शैक्षिक प्रदर्शन

चर	सहसंबंध गुणांक (त)
साइबर–बुलिंग एवं शैक्षिक प्रदर्शन	–0.54

व्याख्याः नकारात्मक सहसंबंध पाया गया।

सारणी 5 : तनाव और शैक्षिक प्रदर्शन

चर	सहसंबंध गुणांक (r)
तनाव एवं शैक्षिक प्रदर्शन	–0.61

व्याख्याः तनाव बढ़ने पर शैक्षिक प्रदर्शन में कमी देखी गई।

परिणाम

1. अधिकांश विद्यार्थियों में साइबर–बुलिंग का स्तर मध्यम पाया गया।
2. विद्यार्थियों में तनाव का स्तर भी मुख्यतः मध्यम पाया गया।
3. साइबर–बुलिंग और तनाव के मध्य सकारात्मक एवं महत्वपूर्ण संबंध पाया गया।
4. साइबर–बुलिंग और शैक्षिक प्रदर्शन के मध्य नकारात्मक संबंध पाया गया।
5. तनाव और शैक्षिक प्रदर्शन के मध्य भी नकारात्मक संबंध पाया गया।
6. साइबर–बुलिंग के शिकार विद्यार्थियों में अध्ययन के प्रति रुचि अपेक्षाकृत कम पाई गई।
7. तनाव विद्यार्थियों की एकाग्रता तथा स्मरण शक्ति को प्रभावित करता है।
8. साइबर–बुलिंग अप्रत्यक्ष रूप से तनाव बढ़ाकर शैक्षिक प्रदर्शन को प्रभावित करती है।

विवेचना

प्राप्त निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि साइबर–बुलिंग आधुनिक विद्यालयी जीवन की एक महत्वपूर्ण समस्या है। जिन विद्यार्थियों को ऑनलाइन माध्यमों से प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है, उनमें मानसिक तनाव की मात्रा अधिक होती है। यह निष्कर्ष Hinduja एवं Patchin (2010) तथा ज्ञवूंसेप मज ंस. (2014) के अध्ययनों से मेल खाता है।

तनाव का उच्च स्तर विद्यार्थियों की संज्ञानात्मक क्षमताओं को प्रभावित करता है। अत्यधिक तनाव के कारण ध्यान, स्मृति तथा समस्या–समाधान क्षमता में कमी आ सकती है। परिणामस्वरूप विद्यार्थियों का शैक्षिक प्रदर्शन प्रभावित होता है।

साइबर–बुलिंग और शैक्षिक प्रदर्शन के मध्य नकारात्मक संबंध यह दर्शाता है कि ऑनलाइन प्रताड़ना विद्यार्थियों की सीखने की प्रक्रिया को बाधित करती है। विद्यार्थी विद्यालय जाने, कक्षा में भाग लेने तथा शैक्षणिक गतिविधियों में रुचि लेने से बच सकते हैं। इससे उनकी उपलब्धि में गिरावट आती है।

अध्ययन यह भी संकेत करता है कि तनाव एक मध्यस्थ चर के रूप में कार्य करता है। अर्थात साइबर–बुलिंग तनाव को बढ़ाती है और बढ़ा हुआ तनाव शैक्षिक प्रदर्शन को कम करता है। अतः विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य की सुरक्षा हेतु साइबर–बुलिंग की रोकथाम अत्यंत आवश्यक है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों में साइबर–बुलिंग, तनाव तथा शैक्षिक प्रदर्शन के मध्य महत्वपूर्ण संबंध पाया जाता है। साइबर–बुलिंग का अनुभव करने वाले विद्यार्थियों में

तनाव का स्तर अधिक होता है तथा उनका शैक्षिक प्रदर्शन अपेक्षाकृत कम पाया जाता है। तनाव विद्यार्थियों की एकाग्रता, स्मृति तथा सीखने की क्षमता को प्रभावित करता है, जिसके परिणामस्वरूप शैक्षणिक उपलब्धि में गिरावट आती है।

अतः विद्यालयों में साइबर सुरक्षा संबंधी जागरूकता कार्यक्रम, परामर्श सेवाएँ तथा डिजिटल नैतिकता शिक्षा को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। अभिभावकों और शिक्षकों को विद्यार्थियों की ऑनलाइन गतिविधियों के प्रति संवेदनशील रहना चाहिए ताकि साइबर–बुलिंग की घटनाओं की समय पर पहचान और रोकथाम की जा सके।

संदर्भ सूची

Bauman, S. (2015). Cyberbullying in a rural intermediate school. *Journal of School Violence, 14*(2), 190–203.

Cassidy, W., Jackson, M., & Brown, K. (2009). Sticks and stones can break my bones, but how can pixels hurt me? *School Psychology International, 30*(4), 383–402.

Hinduja, S., & Patchin, J. W. (2010). Bullying, cyberbullying, and suicide. *Archives of Suicide Research, 14*(3), 206–221.

Kowalski, R. M., Giumetti, G. W., Schroeder, A. N., & Lattanner, M. R. (2014). Bullying in the digital age. *Psychological Bulletin, 140*(4), 1073–1137.

Nixon, C. L. (2014). Current perspectives: The impact of cyberbullying on adolescent health. *Adolescent Health, Medicine and Therapeutics, 5*, 143–158.

Olweus, D. (1993). *Bullying at school: What we know and what we can do*. Blackwell.

Patchin, J. W., & Hinduja, S. (2015). Measuring cyberbullying. *Youth Violence and Juvenile Justice, 13*(1), 69–83.

Sharma, R., & Verma, P. (2021). Cyberbullying and stress among adolescents. *Indian Journal of Educational Psychology, 15*(2), 55–67.

Smith, P. K., Mahdavi, J., Carvalho, M., & Tippett, N. (2008). Cyberbullying: Its nature and impact in secondary school pupils. *Journal of Child Psychology and Psychiatry, 49*(4), 376–385.

World Health Organization. (2023). *Adolescent mental health report*. WHO Publications.

बाल श्रमिकों की समस्या और समाधान

शैल कुमारी*

शोध सार -

प्रस्तुत शोध पत्र **"बाल श्रमिकों की समस्या और समाधान"** है । बाल श्रमिक वह होता है जिसकी उम्र 14 वर्ष के कम हो एवं कानून द्वारा निर्धारित न्यूनतम आयु से कम होते हुए भी मजदूरी या काम करता है। यह प्रथा समाज में शोषण का प्रतीक माना जाता है और बच्चों के अधिकारों का उल्लंघन करती है। बाल श्रम एक गंभीर सामाजिक समस्या है जो न केवल बच्चों के बचपन को छीन लेती है बल्कि उनके शारीरिक, मानसिक और शैक्षिक विकास को भी बाधित करती है। भारत जैसे विकासशील देशों में यह समस्या अधिक गहरी है क्योंकि यहाँ गरीबी, अशिक्षा और सामाजिक असमानता के कारण बच्चे मजबूर होकर काम करने लगते हैं। बाल श्रमिक अक्सर खेतों, कारखानों, ढाबों, होटलों, घरेलू कामों और खतरनाक उद्योगों में पाए जाते हैं। इन बच्चों को कम वेतन पर लंबे समय तक काम करना पड़ता है, जिससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ता है और वे शिक्षा से वंचित रह जाते हैं।

बाल श्रमिक बनने के पीछे कई कारण हैं। सबसे बड़ा कारण गरीबी है। जब परिवार की आर्थिक स्थिति कमजोर होती है तो माता-पिता बच्चों को पढ़ाने के बजाय काम पर भेज देते हैं ताकि घर का खर्च चल सके। शिक्षा की कमी भी एक बड़ा कारण है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूलों की कमी और शिक्षा का खर्च उठाने में असमर्थता बच्चों को मजदूरी की ओर धकेलती है। इसके अलावा सस्ते श्रमिक की मांग भी बाल श्रम को बढ़ावा देती है। उद्योगपति और व्यापारी बच्चों को कम वेतन पर काम पर रखते हैं क्योंकि वे आसानी से शोषित किए जा सकते हैं। सामाजिक जागरूकता की कमी भी इस समस्या को गहरा करती है। समाज में बाल श्रम को अपराध मानने की सोच अभी भी पूरी तरह विकसित नहीं हुई है।

बाल श्रमिक होने के प्रभाव बेहद गंभीर हैं। कम उम्र में कठिन काम करने से बच्चों का शारीरिक स्वास्थ्य बिगड़ता है। वे कुपोषण, थकान और बीमारियों का शिकार हो जाते हैं। शिक्षा से वंचित होने के कारण उनका मानसिक विकास रुक जाता है और वे भविष्य में भी अशिक्षित और गरीब बने रहते हैं। बाल श्रम समाज पर भी नकारात्मक असर डालता है क्योंकि अशिक्षित नागरिक समाज की प्रगति में बाधा डालते हैं। यह समस्या देश के विकास को धीमा करती है और गरीबी के चक्र को बनाए रखती है।

भारत में बाल श्रम को रोकने के लिए कई कानून बनाए गए हैं। **बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम 1986** के तहत 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को खतरनाक उद्योगों में काम करने से रोका गया है। 2016 में इस कानून में संशोधन किया गया, जिसके अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को किसी भी व्यावसायिक काम में नहीं लगाया जा सकता, सिवाय पारिवारिक व्यवसाय या मनोरंजन उद्योग में, वह भी शिक्षा में बाधा न डालते हुए। 14 से 18 वर्ष के किशोरों को भी खतरनाक उद्योगों में काम करने की अनुमति नहीं है। इस कानून में बाल श्रम कराने वाले नियोक्ताओं पर जुर्माना और कारावास का प्रावधान है।

बाल श्रम को समाप्त करने के लिए कई उपाय किए जा सकते हैं। सबसे पहले शिक्षा का प्रसार जरूरी है। मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा से बच्चों को स्कूलों में लाना होगा। गरीबी उन्मूलन भी आवश्यक है ताकि परिवारों की आर्थिक स्थिति सुधरे और वे बच्चों को काम पर भेजने के बजाय पढ़ा सकें। कानून का सख्त

* शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

पालन करना होगा और बाल श्रम कराने वाले उद्योगों पर कठोर कार्रवाई करनी होगी। समाज में जागरूकता अभियान चलाकर लोगों को बाल श्रम के दुष्प्रभावों के बारे में बताना होगा।

भारत में बाल श्रमिकों की समस्या गंभीर सामाजिक चुनौती है। गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी के कारण बच्चे कम उम्र में ही मजदूरी करने लगते हैं। वे कारखानों, ढाबों, खेतों और घरेलू कामों में शोषण का शिकार होते हैं। इससे उनका बचपन छिन जाता है और शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। बाल श्रम न केवल उनके शारीरिक और मानसिक विकास को रोकता है बल्कि समाज की प्रगति में भी बाधा डालता है।

समाधान के लिए सबसे पहले गरीबी उन्मूलन और शिक्षा का प्रसार आवश्यक है। सरकार को कठोर कानून लागू करने चाहिए ताकि बाल श्रम करने वाले व्यक्तिओं पर सख्त कार्रवाई हो। साथ ही, परिवारों को जागरूक करना और बच्चों को मुफ्त व गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराना जरूरी है। समाज को भी यह समझना होगा कि बाल श्रम रोकना केवल सरकार का नहीं बल्कि हर नागरिक का कर्तव्य है। जब बच्चे पढ़ेंगे और स्वस्थ रहेंगे तभी राष्ट्र का भविष्य उज्ज्वल होगा।

बाल श्रम एक बहुत बड़ी समस्या है जिसका मूल कारण गरीबी, अशिक्षा और सामाजिक असमानता है। भारत में लाखों बच्चे आज भी मजदूरी करने को मजबूर हैं। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के अनुसार, बाल श्रम बच्चों के अधिकारों का उल्लंघन है और यह उनके मानसिक, शारीरिक तथा भावनात्मक विकास को बाधित करता

बाल श्रम, गरीबी, शिक्षा

बाल श्रम रोकना केवल सरकार का काम नहीं बल्कि समाज का भी नैतिक कर्तव्य है। जब हर बच्चा शिक्षा पाएगा तभी राष्ट्र का भविष्य सुरक्षित होगा और बाल श्रम पर नियंत्रण संभव हो पायेगा ।

भारत में बाल श्रमिकों की समस्या एक गहरी सामाजिक और आर्थिक चुनौती है। यह समस्या केवल भारत तक सीमित नहीं है बल्कि विश्वभर में मौजूद है। बाल श्रम का अर्थ है बच्चों से उनकी आयु के अनुरूप न होने वाले कार्य कराना, जिससे उनका बचपन, शिक्षा और विकास प्रभावित होता है।

- अशिक्षा और शिक्षा का अभाव
- सामाजिक असमानता
- सस्ती मजदूरी की मांग
- परिवार की आर्थिक मजबूरी

बाल श्रम के प्रभाव

- शारीरिक और मानसिक विकास में बाधा
- शिक्षा से वंचित होना
- शोषण और असमानता का शिकार
- जीवनभर गरीबी के चक्र में फंसे रहना

भारत में बाल श्रम की स्थिति

ILO और यूनिसेफ की रिपोर्टों के अनुसार भारत में लाखों बच्चे आज भी मजदूरी करने को मजबूर हैं। वे ईंट भट्टों, कारखानों, ढाबों, घरेलू कामों और खेतों में काम करते हैं।

कानूनी प्रावधान

भारत सरकार ने बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम, 1986 और शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 लागू किए हैं। इसके तहत 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों से काम कराना अपराध है।

समाधान के उपाय

- गरीबी उन्मूलन और रोजगार सृजन

- मुफ्त और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा
- कठोर कानून और उनका प्रभावी क्रियान्वयन
- सामाजिक जागरूकता अभियान
- NGOs और नागरिक समाज की भागीदारी

सरकारी योजनाएँ

- राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना (NCLP)
- मिड-डे मील योजना
- शिक्षा का अधिकार अधिनियम
- स्कॉलरशिप और छात्रवृत्ति योजनाएँ

सामाजिक जिम्मेदारी

बाल श्रम रोकना केवल सरकार का नहीं बल्कि समाज का भी कर्तव्य है। हर नागरिक को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि बच्चे शिक्षा प्राप्त करें और सुरक्षित वातावरण में बड़े हों।

बाल श्रम एक बहुआयामी समस्या है जिसका मूल कारण गरीबी, अशिक्षा और सामाजिक असमानता है। भारत में लाखों बच्चे आज भी मजदूरी करने को मजबूर हैं। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के अनुसार, बाल श्रम बच्चों के अधिकारों का उल्लंघन है और यह उनके मानसिक, शारीरिक तथा भावनात्मक विकास को बाधित करता है।

बाल श्रमिकों को अक्सर खतरनाक परिस्थितियों में काम करना पड़ता है, जैसे कि ईंट भट्टों, खदानों, कारखानों और घरेलू कामों में। लंबे समय तक काम करने से उनकी शिक्षा छूट जाती है और वे जीवनभर गरीबी के चक्र में फंसे रहते हैं।

समाधान के लिए बहुस्तरीय प्रयास आवश्यक हैं।

- **गरीबी उन्मूलन**: परिवारों की आर्थिक स्थिति सुधारने से बच्चों को काम करने की मजबूरी कम होगी।
- **शिक्षा का प्रसार**: मुफ्त और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा बच्चों को बाल श्रम से बाहर निकाल सकती है।
- **कानूनी प्रावधान**: कठोर कानून और उनका प्रभावी क्रियान्वयन जरूरी है।
- **सामाजिक जागरूकता**: समाज को यह समझना होगा कि बाल श्रम रोकना सामूहिक जिम्मेदारी है।

सरकार ने कई योजनाएँ चलाई हैं जैसे कि "राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना" और "मिड-डे मील योजना" ताकि बच्चों को स्कूल में बनाए रखा जा सके। NGOs भी इस दिशा में काम कर रहे हैं। बाल श्रम का समाधान केवल कानून से नहीं बल्कि शिक्षा, आर्थिक सुधार और सामाजिक सहयोग से संभव है। जब हर बच्चा स्कूल जाएगा और सुरक्षित वातावरण में बड़ा होगा तभी समाज का वास्तविक विकास होगा।

समाधान के उपाय

- **गरीबी उन्मूलन**
- **शिक्षा का प्रसार**
- **कठोर कानून**
- **सामाजिक जागरूकता**
- NGOs और नागरिक समाज की भागीदारी

सामाजिक जिम्मेदारी

बाल श्रम रोकना केवल सरकार का नहीं बल्कि समाज का भी कर्तव्य है। हर नागरिक को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि बच्चे शिक्षा प्राप्त करें और सुरक्षित वातावरण में बड़े हों।

बाल श्रम एक बहुआयामी समस्या है जिसका मूल कारण गरीबी, अशिक्षा और सामाजिक असमानता है। भारत में लाखों बच्चे आज भी मजदूरी करने को मजबूर हैं। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के अनुसार, बाल श्रम बच्चों के अधिकारों का उल्लंघन है और यह उनके मानसिक, शारीरिक तथा भावनात्मक विकास को बाधित करता है।

निष्कर्षतः, बाल श्रमिक समाज की एक गंभीर समस्या है जो बच्चों के बचपन, शिक्षा और भविष्य को छीन लेती है। इसे समाप्त करने के लिए सरकार, समाज और परिवार सभी को मिलकर प्रयास करना होगा। जब तक गरीबी, अशिक्षा और शोषण की जड़ें खत्म नहीं होंगी, तब तक बाल श्रम पूरी तरह समाप्त नहीं हो सकता। बच्चों को शिक्षा और सुरक्षित बचपन देना ही असली समाधान है। बाल श्रमिकों को अक्सर खतरनाक परिस्थितियों में काम करना पड़ता है, जैसे कि ईंट भट्टों, खदानों, कारखानों और घरेलू कामों में। लंबे समय तक काम करने से उनकी शिक्षा छूट जाती है और वे जीवनभर गरीबी के चक्र में फंसे रहते हैं।

संदर्भ सूची

- भारत सरकार, श्रम मंत्रालय। श्रम मंत्रालय प्रकाशन. नई दिल्ली: भारत सरकार।
- भारत सरकार। राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना (NCLP). नई दिल्ली: श्रम मंत्रालय।
- भारत सरकार। (2009)। शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009. नई दिल्ली: भारत सरकार।
- भारत सरकार। (1986)। बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम, 1986. नई दिल्ली: भारत सरकार।
- भारत सरकार। आर्थिक सर्वेक्षण भारत – गरीबी और बाल श्रम. नई दिल्ली: वित्त मंत्रालय।
- NGO रिपोर्ट। बाल श्रम जागरूकता अभियान. नई दिल्ली: [NGO का नाम]।
- Human Rights Watch। *Child Labour in India*. New York: Human Rights Watch।
- International Labour Organization (ILO)। (2021)। *Global Estimates of Child Labour*. Geneva: ILO।
- UNESCO। *The Elimination of Child Labour*. Paris: UNESCO।
- UNICEF Indi। *Child Labour and Education*. New Delhi: UNICEF